अमिय हलाहल मदभरे

सपादक
श्रीगोपाल गोस्वामी
शोध सहायक
भा वि म शोधप्रतिष्ठान बीकानेर



भारतीय विद्या मदिर शोध प्रतिष्ठान
बीकानेर (राजस्थान)

भारतीय विद्या मन्दिर ग्रन्थमाला-३

परामर्श मंडल
श्री नरोत्तमदास स्वामी एम ए
श्री नाथूराम खडगावत एम ए
श्री अक्षयचन्द्र शर्मा एम ए
श्री शम्भूदयाल सक्सेना

प्रथम संस्करण
श्रा० सं० १८८४ [१९६२ ई०]

मूल्य चार रुपये

प्रकाशक
भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान
बीकानेर [राजस्थान]

मुद्रक
एज्यूकेशनल प्रेस बीकानेर

आभार

"अमिय हलाहल मदभरे" को विज्ञ पाठकों को सौंपते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। ग्रंथ के निर्माण में दोहों के प्राचीन ग्रंथों और दोहाकारों का बड़ा योग रहा है विशेषत अनूप संस्कृत लाइब्रेरी व "दोहा रत्नाकर" का। अत हम इन सभी ज्ञात-अज्ञात दोहाकारों और कवियों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करते हैं। श्री अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के अधिकारियों के प्रति हम अपना आभार प्रकट करना नहीं भूल सकते जिन्होंने हमारे शोध सहायक श्री गोस्वामी को अध्ययन की सभी सुविधाएं प्रदान कीं।

ग्रंथ माला के प्रकाशन में राज्य शिक्षाधिकारी श्री जगन्नाथ सिंह जी मेहता और कुंवर श्री जसवन्त सिंह जी का अतुलनीय सहयोग रहा है। हम किन शब्दों में उनका आभार प्रकट करें।

मूलचन्द पारीक
रजिस्ट्रार
भारतीय विद्या मन्दिर, बीकानेर

दो शब्द

श्री अगरचन्द जी नाहटा व "अमिय हलाहल मदभरे" ग्रंथ को प्रकाशित करते हुए हमें बड़ी खुशी हो रही है। बड़े परिश्रम से यह ग्रन्थ तैयार किया गया है। आँखों के विभिन्न व्यापारों और उनकी भाव भंगिमाओं पर ऐसे चुभते और मनमोहक दोहों का इतना बड़ा सकलन अन्यत्र नहीं मिलता। यह अपने ढंग का पहला सकलन है।

काव्य और सौन्दर्य शास्त्र में आँखों की बनावट, उनकी भंगिमा और उनके विभिन्न व्यापारों का बड़ा महत्व है। प्राचीन काल से ही कलाकारों और कवियों का ध्यान इस ओर गया है। सभी कवियों ने चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान आँखों की पवित्रता और उनके "अनबोले बोल" की करामात पर अपनी लेखनी के दो प्रसून चढ़ाये हैं। परम्परागत साहित्य धारा की इस विधा का सपूर्ण निदर्शन कराने का श्रेय सपादक का है। वर्गीकरण के द्वारा यह काम बड़ी खूबी से किया गया है। हमें विश्वास है कि यह ग्रन्थ अधिक से अधिक हाथों में पहुँचेगा और प्रत्येक साहित्य प्रेमी पाठक इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के अध्ययन से लाभ उठायेगा। इत्यलम्।

सत्यनारायण पारीक
अध्यक्ष
भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर

प्रस्तावना

काव्य साहित्य का मूल उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति माना गया है।[1] इस आनन्द की उपलब्धि हेतु प्राचीन काल से कवि-गणों द्वारा सतत प्रयत्न होते रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ 'अमिय हलाहल मदभरे' मुक्तक काव्य धारा के ४२२ मुक्तकों का सकलन है। हिन्दी राजस्थानी के मुक्तक साहित्य में 'दोहा' सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है। लघु काय तथा अर्थ गांभीर्य की दृष्टि से जनमानस ने 'दोहे' को अन्य छंदों की अपेक्षा श्रेष्ठतम घोषित किया —

गुण मदर वूहो घणी गाह महेलो मित्त।
छवा आणत लार है, गीत प्रधान कवित्त॥

छोटो मुक का दूहडा, कवित्त छद का भूप।
जाणे बलराइ छलण कू कियोज बामन रूप॥[2]

रहीम का 'सिमिटि चढ नट कुडली' तो प्रसिद्ध है ही। तदुपरान्त अपभ्रंश साहित्य के विकास-काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न विषयों पर लक्ष-लक्षावधि दोहों की उपलब्धि इस छंद की सर्वाधिक लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रस्तुत सकलन में मात्र आखों से सबन्धित 'दोहों' की उपलब्धि भी उपयुक्त प्रमाण को परिपुष्ट करती है।

ज्ञानेन्द्रियों मे नेत्र प्रधान हैं। नेत्रों का जितना सम्बन्ध अन्तःकरण से है उतना अन्य इन्द्रियों का नहीं। नेत्रों का ही एक मात्र माध्यम ऐसा है जो भोग के अभाव में मन को कुण्ठाग्रस्त नहीं होने देता है और प्रेम को अधिकाधिक वृद्धिगत करता है, वियोगाग्नि में जलने से बचाता है।[3]

---

१ मतिराम कवि और आचार्य

२ दोहालाकर, पत्र ३६४ २, दोहा सख्या ६४, ६५

३ मतिराम कवि और आचार्य

ये आँखें केवल देखती ही नहीं हैं बल्कि—ढूँढ़ती हैं, उलझती हैं, रोती हैं, भरती हैं, ढलती हैं, इतराती हैं, झरती हैं नाचती हैं, पीती हैं, दौड़ती हैं, अकुलाती हैं सकुचाती हैं अटकती हैं तरसाती हैं, डूबती हैं हँसती हैं, दुखी होती हैं रीझती हैं मारती हैं जिलाती हैं पागल बनाती हैं चकित होती हैं, फूलती हैं लगती हैं, लड़ती हैं, थकती हैं, हारती हैं निहारती हैं, सटपटाती हैं अलसाती हैं, मुसकराती हैं, मिलती हैं, रस्क करती हैं गिरती हैं गड़ती हैं टपकती हैं, फूटती हैं, बेधती हैं, उमड़ती हैं, और न जाने क्या क्या करती हैं।

यह 'आँखें' इतने काम करने वाली होने पर भी सांख्य आदि शास्त्र प्रणेताओं की दृष्टि में चाहे कर्मेन्द्रिय नहीं बन सकी हैं परन्तु हमारे कवियों ने इसे केवल ज्ञानेन्द्रिय माना हो ऐसी बात नहीं है उन्होंने इसके कार्यक्षेत्र को पर्याप्त विशाल माना है और अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा इसके वर्णन को प्रमुखता दी है।

सब प्रकार के वर्णनों की भाँति आँखों का वर्णन भी दो प्रकार का प्राप्त होता है—

(१) वस्तुपरक
(२) भावपरक

वस्तुपरक वर्णन में नयनों की बनावट सम्बन्धी दृश्य—सरल, तरल, तीखे, कुटिल, असित सित, रतनार, अरुण उज्ज्वल, चपल, कजरारे, अनियारे आदि शब्दों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि वस्तुपरक वर्णन बाह्य सौन्दर्य का वर्णन होता है इस प्रकार के वर्णन में विद्वानों का मत है कि परम्परागत अवधि में आबद्ध रहकर वे ही विशिष्ट उपमानों का आश्रय लेना पड़ता है, वे ही परम्परागत विशेषण प्रयुक्त करने पड़ते हैं। जहाँ कहीं भी अप्रस्तुतों एवं विशेषणों का प्रयोजन है वहाँ श्रोता और वक्ता दोनों की दृष्टि में वही एक सीमाबद्ध स्वरूप उपस्थित रहता है।[1]

कथित अभिमत नयनों के एकांगी वर्णन में माना जा सकता है किन्तु जहाँ नयनों का सर्वांगीण वर्णन करते हुए समन्वित रूप प्रस्तुत किया जाता है वहाँ कवियों की कल्पना

---

१ मतिराम कवि और आचार्य।

अनूठी उडाने भरने को स्वतन्त्र है। ऐसा हुआ भी है। वहाँ वे अप्रस्तुतो को प्रत्यक्ष करने मे स्वच्छन्द रह कर भी सफल व सिद्ध हुए हैं।

आँखों के वस्तुपरक परम्परागत उपमान श्वेत, नील व रक्त वर्ण के कमल, विभिन्न पुष्प मग, खजन विभिन्न नक्षत्र आदि हैं। इन उपमानों का प्रयोग आदि काव्य से लेकर वर्तमान पर्यन्त के काव्यों मे निष्ठापूर्वक हुआ है।

भावपरक वर्णन[1] मे इयत्ता नही होती है। 'भिन्न रुचिर्हिलोक' के आधार पर विभिन्न अनुभूतियो के द्वारा विभिन्न भावों का प्रभविष्णु वर्णन, प्रेम के ऐन्द्रिय और शुद्ध दोनों रूपा में सामने आता है। कवि जिस वस्तु को देखता है उसकी प्रतिक्रिया उसके मन पर होती है। उसके प्रभाव से अनुभव करके वह अपने शब्दों मे उसे प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के वर्णन मे पाठक को तब तक आनन्द की उपलब्धि नही होती जब तक कि वह कवि से तादात्म्य स्थापित करता हुआ उसकी भावभूमि तक पहुँचकर उस अभिव्यक्ति को हृदयगम न कर ले।

चाहे स्थूल उपमानों द्वारा अभिव्यञ्जित रीतिकालीन वर्णन हो या भावोद्रेक की स्थिति मे स्थूल वस्तु के दर्शनोपरान्त उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया की व्यञ्जना हो, दोनो स्थितियो मे गहन अनुभूति से ही मानसिक आनन्द प्राप्त है। क्योंकि अनुभूति ही सहृदय के मन में अनुभूति जगाती है कल्पना तो, अनुभूति की सहृदयता प्रवण का साधन है परन्तु काव्य का सवेद्य तो अनुभूति ही है।

भावपरक वर्णन में विशेषणों की युक्तियुक्तता की आवश्यकता होती है। चित्रोपमता के साथ-साथ भावोद्दीपन क्षमता के सुचारु सनिवेश का महत्त्व होता है।[2]

भावों को उद्दीप्त करने के लिए जीवन्त चित्रों को प्रस्तुत करने वाले रीतिगत एवं रीति मुक्त वर्णन में जहाँ आश्रयगत विशेषणों का प्रयोग हुआ है वहाँ व्यथा भरे चित्रों से साक्षात्कार होते ही विरह और वेदना की गम्भीरता अनुभव होने लगती है

१ मतिराम कवि और आचार्य।
२ हिन्दी सा० का बृ० इति० —डा० नगेन्द्र

ये आँखें केवल देखती ही नहीं हैं बल्कि—ढूँढती हैं, उलझती हैं, रोती हैं, भरती हैं, छलती हैं, इतराती हैं, झरती हैं, नाचती हैं, पीती हैं, दौड़ती हैं, अकुलाती हैं, सकुचाती हैं, अटकती हैं, तरसाती हैं, डूबती हैं, हँसती हैं, दुखी होती हैं, रीझती हैं, मारती हैं, जिलाती हैं, पागल बनाती हैं, चकित होती हैं, फूलती हैं, लगती हैं, लड़ती हैं, थकती हैं, हारती हैं, निहारती हैं, छटपटाती हैं, अलसाती हैं, मुसकराती हैं, मिलती हैं, इरक करती हैं, गिरती हैं, गड़ती हैं, टपकती हैं, फूटती हैं, बेधती हैं, उमड़ती हैं, और न जाने क्या क्या करती हैं।

यह 'आँखें' इतने कार्य करने वाली होने पर भी सांख्य आदि शास्त्र प्रणेताओं की दृष्टि में चाहे कर्मेन्द्रिय नहीं बन सकी हैं, परन्तु हमारे कवियों ने इसे केवल ज्ञानेन्द्रिय माना हो ऐसी बात नहीं है उन्होंने इसके कार्यक्षेत्र को पर्याप्त विशाल माना है और अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा इसके वर्णन को प्रमुखता दी है।

सब प्रकार के वर्णनों की भाँति आँखों का वर्णन भी दो प्रकार का प्राप्त होता है—

(१) वस्तुपरक
(२) भावपरक

वस्तुपरक वर्णन में नयनों की बनावट सम्बन्धी दृश्य—सरल, तरल, तीखे, कुटिल, असित सेत, रतनारे, अरुण उज्ज्वल, चपल कजरारे, अनियारे आदि शब्दों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि वस्तुपरक वर्णन बाह्य सौंदर्य का वर्णन होता है इस प्रकार के वर्णन में विद्वानों का मत है कि परम्परागत अवधि में आबद्ध रहकर उन्हीं विशिष्ट उपमानों का आश्रय लेना पड़ता है, वे ही परम्परागत विशेषण प्रयुक्त करने पड़ते हैं। अतः कहीं भी अप्रस्तुतों एवं विशेषणों का प्रयोजन है वहाँ श्रोता और वक्ता दोनों की दृष्टि में वही एक सीमाबद्ध स्वरूप उपस्थित रहता है।[1]

कथित अभिमत नयनों के एकांगी वर्णन में माना जा सकता है किन्तु जहाँ नयनों का सर्वांगीण वर्णन करते हुए समन्वित रूप प्रस्तुत किया जाता है वहाँ कवियों की कल्पना

---

१. मतिराम कवि और आचार्य।

अनूठी उडाने भरने का स्वतन्त्र है। ऐसा हुआ भी है। वहाँ वे अप्रस्तुतो को प्रत्यक्ष करने में स्वच्छन्द रह कर भी सफल व सिद्ध हुए हैं।

आँखो के वस्तुपरक परम्परागत उपमान श्वेत, नील व रक्त वर्ण के कमल, विभिन्न पुष्प मृग, खजन विभिन्न मत्स्य आदि हैं। इन उपमानों का प्रयोग आदि काव्य से लेकर वर्तमान पर्यन्त के काव्यों में निष्ठापूर्वक हुआ है।

भावपरक वर्णन[1] में इयता नही होती है। 'भिन्न रुचिर्हिलोक' के आधार पर विभिन्न अनुभूतियों के द्वारा विभिन्न भावों का प्रभविष्णु वर्णन, प्रेम के ऐन्द्रिय और शुद्ध दोनों रूपों में सामने आता है। कवि जिस वस्तु को देखता है उसकी प्रतिक्रिया उसके मन पर होती है। उसके प्रभाव से अनुभव करके वह अपने शब्दों में उसे प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के वर्णन में पाठक को तब तक आनन्द की उपलब्धि नहो होती जब तक कि वह कवि से तादात्म्य स्थापित करता हुआ उसकी भावभूमि तक पहुँचकर उस अभिव्यक्ति को हृदयगम न कर ले।

चाहे स्थूल उपमानों द्वारा अभिव्यञ्जित रीतिकालीन वर्णन हो या भावोद्रेक की स्थिति में स्थूल वस्तु के दर्शनोपरान्त उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया की व्यञ्जना हो, दोनों स्थितियों में गहन अनुभूति से ही मानसिक आनन्द प्राप्त है। क्योंकि अनुभूति ही सहृदय के मन में अनुभूति जगाती है कल्पना तो, अनुभूति को सहृदयता प्रवण का साधन है परन्तु काव्य का सवेद्य तो अनुभूति ही है।

भावपरक वर्णन में विशेषणों की युक्तियुक्तता की आवश्यकता होती है। चित्रोपमता के साथ-साथ भावोद्दीपन क्षमता के सुचारु सन्निवेश का महत्त्व होता है।[2]

भावों को उद्दीप्त करने के लिए जीवन्त चित्रो को प्रस्तुत करने वाले रीतिगत एव रीति मुक्त वर्णन में जहाँ आश्रयगत विशेषणों का प्रयोग हुआ है वहाँ व्यथा भरे चित्रों से साक्षात्कार होते ही विरह और वेदना की गम्भीरता अनुभव होने लगती है

---

१ मतिराम कवि और आचार्य।

२ हिन्दी सा० का वृ० इति०—डा० नगेन्द्र

ये आंखें केवल देखती ही नहीं हैं बल्कि—ढूंढती हैं, उलझती हैं, रोती हैं, मरती हैं, ढलती हैं, इतराती हैं, भरती हैं नाचती हैं, पीती हैं, दौड़ती हैं, अकुलाती हैं सकुचाती हैं अटकती हैं तरसाती हैं डूबती हैं हंसती हैं, दुखी होती हैं रीझती हैं मारती हैं, जिलाती हैं पागल बनाती हैं चकित होती हैं, फूलती हैं लगती हैं लड़ती हैं, थकती हैं, हारती हैं निहारती हैं, सटपटाती हैं अलसाती हैं, मुसकराती हैं, मिलती हैं, इश्क करती हैं गिरती हैं गड़ती हैं, टपकती हैं, फूटती हैं, बचती हैं, उमड़ती हैं, और न जाने क्या क्या करती हैं।

यह 'आंखें' इतने काय करने वाली होने पर भी साहित्य आदि शास्त्र प्रणेताओं की दृष्टि में चाहे कर्मेन्द्रिय नहीं बन सकी हैं, परन्तु हमारे कवियों ने इसे केवल ज्ञानेन्द्रिय माना हो ऐसी बात नहीं है उन्होंने इसके कार्यक्षेत्र को पर्याप्त विशाल माना है और अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा इसके वर्णन को प्रमुखता दी है।

सब प्रकार के वर्णनों की भांति आंखों का वर्णन भी दो प्रकार का प्राप्त होता है—

(१) वस्तुपरक

(२) भावपरक

वस्तुपरक वर्णन में नयनों की बनावट सम्बन्धी दृश्य—सरल, तरल, तीखे, कुटिल, असित सित, रतनार, अरुण उज्ज्वल, चपल, कजरारे, अनियारे आदि शब्दों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि वस्तुपरक वर्णन बाह्य सौन्दर्य का वर्णन होता है इस प्रकार के वर्णन में विद्वानों का मत है कि परम्परागत अवधि में आबद्ध रहकर उन्हीं विशिष्ट उपमानों का आश्रय लेना पड़ता है, वे ही परम्परागत विशेषण प्रयुक्त करने पड़ते हैं। जहां कहीं भी अप्रस्तुतों एवं विशेषणों का प्रयोजन है वहां श्रोता और वक्ता दोनों की दृष्टि में वही एक सीमाबद्ध स्वरूप उपस्थित रहता है।[१]

यद्यपि अभिमत नयनों के एकांगी वर्णन में माना जा सकता है किन्तु जहां नयनों का सर्वांगीण वर्णन करते हुए समन्वित रूप प्रस्तुत किया जाता है वहां कवियों की कल्पना

---

१ मतिराम कवि और आचार्य।

उड़ान भरने को स्वतन्त्र है। ऐसा हुआ भी है। वहाँ वे अप्रस्तुतों को प्रत्यक्ष करने में स्वच्छन्द रह कर भी सफल व सिद्ध हुए हैं।

आँखों के वस्तुपरक परम्परागत उपमान श्वेत, नील व रक्त वर्ण के कमल, विभिन्न पुष्प, मृग, खंजन विभिन्न शस्त्र आदि हैं। इन उपमानों का प्रयोग आदि काव्य से लेकर वर्तमान पर्यन्त के काव्यों में निष्ठापूर्वक हुआ है।

भावपरक वर्णन[1] में इयत्ता नहीं होती है। 'भिन्न रुचिर्हिलोक' के आधार पर विभिन्न अनुभूतियों के द्वारा विभिन्न भावों का प्रभविष्णु वर्णन, प्रेम के ऐन्द्रिय और शुद्ध दोनों रूपों में सामने आता है। कवि जिस वस्तु को देखता है उसकी प्रतिक्रिया उसके मन पर होती है। उसके प्रभाव से अनुभव करके वह अपने शब्दों में उसे प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के वर्णन में पाठक को तब तक आनन्द की उपलब्धि नहीं होती जब तक कि वह कवि से तादात्म्य स्थापित करता हुआ उसकी भावभूमि तक पहुँचकर उस अभिव्यक्ति को हृदयंगम न कर ले।

चाहे स्थूल उपमानों द्वारा अभिव्यञ्जित रीतिकालीन वर्णन हो या भावोद्रेक की स्थिति में स्थूल वस्तु के दर्शनोपरान्त उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया की व्यञ्जना हो, दोनों स्थितियों में गहन अनुभूति से ही मानसिक आनन्द प्राप्त है। क्योंकि अनुभूति ही सहृदय के मन में अनुभूति जगाती है कल्पना तो, अनुभूति की सहृदयता प्रेषण का साधन है परन्तु काव्य का संवेद्य तो अनुभूति ही है।

भावपरक वर्णन में विशेषणों की युक्तियुक्तता की आवश्यकता होती है। चित्रोपमता के साथ-साथ भावोद्दीपन क्षमता के सुचारु सन्निवेश का महत्त्व होता है।[2]

भावों को उद्दीप्त करने के लिए जीवन्त चित्रों को प्रस्तुत करने वाले रीतिगत एवं रीति मुक्त वर्णन में जहाँ आश्रयगत विशेषणों का प्रयोग हुआ है वहाँ व्यथा भरे चित्रों से साक्षात्कार होते ही विरह और वेदना की गम्भीरता अनुभव होने लगती है

१ मतिराम कवि और आचार्य।

२ हिन्दी सा० का बृ० इति० —डा० नगेन्द्र

और मानम्बनगत वर्णनों में ऐन्द्रिय विलास के संयोगजन्य भोग की विह्वलता प्रकट होती है।[1]

'नन' के एकांगी वर्णन में भौंहें, पलकें, बरौनियाँ, कोए, तिल, दृष्टि, चितवन अपांग, आँसू काजल रक्तिमा, और नींद आदि से सम्बन्धित अलंकृत व्यञ्जना मानव हृदय के कोमल और मधुर भावों के तारों को जोर से झङ्कृत कर देती है। और नेत्रेन्द्रिय के सर्मा वत वर्णन में भी ऐसे साहित्य की प्रचुरता है जो पीड़ित व सतप्त मन को रस सीकरयुक्त मनुरमलयानिल से व्यजन करते हुए प्रेम के हिण्डोल में दान दान झुलाने वाला है।[2]

भावों के उद्दीपन में सहायक क्रिया मूलक विशेषणों की जो भरमार आँखों के लिए है वह अन्य अवयव के वर्णन में दुलभ है या असम्भव है।

क्रियामूलक विशेषणों की लम्बी सूची है जिनमें कुछ ये हैं अनखोंहै, सतरौंहैं हैं, ढरारे अरसान सरसाने, दुरान नींद घुरान, लड़ते, तिलौंहे, लगौंहे, नचौंहे, उठौंहे हँसौंहे, मोहिन अलसौंहे, उनदौंहे आदि।

कृत्तद्धितान्त विशेषणों में, छक, बने, छय, रूँधे रसभरे, पगपग, रंगमगे, सलोने, लोने गड भार रसीने, निगोडे, गमआदि हैं।

जहा ननो का स्त्रीलिंग म प्रयोग है वहा—

कनौठी (दीठि), चम्पनी (चितवनि), रूखी (रुख) अनखभरी (अँखियाँ) आदि हैं।

उपयु क्त भाव भर विशषणो का रसास्वादन एक विशिष्ट भावभूमि की गहराई म पहुँचकर ही किया जा सकता है। भावपरक वर्णन के आन द की अनुभूति विषयगत अधिक है वस्तुगत न्यून। अरसिको का यह सुलभ नहीं है।

अनियारे तीखे, बड़रे, करेरे, विशाल, सुरग, चचल, असित, सित, अरुण, आदि विशषण वर्ण व आकार प्रकार के द्योतक हैं। इन विशषणो से चाक्षुष चित्र समक्ष

---

१ हिन्दी साहित्य का वृहद् इति०—डा० नगेन्द्र

२ मतिराम कवि और आचार्य

करने में सहायता मिलती है । पर जहाँ क्रियामूलक विशेषण का उचित प्रयोग होता है वहाँ एक विशेष प्रकार के व्यापार की कल्पना करने पर ही आनन्द की उपलब्धि होती है ।

सम्भोग शृंगार व विप्रलम्भ शृंगार दोनों के वर्णन का आश्रय आँखें हैं पर शृंगार की अभिव्यक्ति यहाँ 'दर्शन' तक में ही होती है अन्यत्र प्राय विप्रलम्भ का प्रयोग रहता है—किन्तु यह 'दर्शन', सयोग का सब प्रथम सोपान है जो परम शुद्ध है ।

चराचर जगत् के वर्णन रूप व आकार का ज्ञान करवाने वाली इस ज्ञानेन्द्रिय का हिन्दी साहित्य में निम्न पर्यायों द्वारा व्यवहार हुआ है —

नैन, नयन, नैना
आँख, अँखियाँ आँखें
लोचन, लोयन या लोइन
चख, दृग, ईछन, दीठि, दृग व नेत्र ।

इतने पर्यायों के होते हुए भी 'नैन' का प्रयोग करना प्राय सभी कवियों को रुचिकर रहा ज्ञात होता है । इस संकलन के दोहों में भी 'नैन' का प्रयोग अतिशयता से हुआ है । शेष पर्यायों का प्रयोग कतिपय स्थानों पर ही हुआ है ।

कवि रसनिधि भी इन नैनों के अन्याय के शिकार हुए से लगते हैं तभी तो उन्होंने इनकी व्यंग्यपूर्ण व्युत्पत्ति की है—

साधु सलित बेचत मनहिं, रसनिधि कर बिनु दाम ।
नैनन मे 'न' नाहिने, यातें नैना नाम ।।
दोनो छवि मन मीत को, कहो कहाँ की रीति ।
नामहि मे 'न' नाहिनो, कर 'नैन' की नीति ।।

रसनिधि के साथ 'नैनों' ने 'न-नय' (न्याय) नहीं किया किसी से जा लगे और उनके मन को उसके हाथ बिना दाम लिए बेच दिया परन्तु 'उसके' हृदय की बात आँखें उनसे कह गईं, तब उन्होंने कहा—

> जो कुछ उपजत आइ उर सो वे यात दति।
> रसनिधि आंख' नाम इन, पायो अरथ समेति॥

'आँख' हृदय की बात कह सकती है पर रूप रस को चाखने वाले तो चख ही हैं —

> और रसन स जानहो, रसना हू अभिराम।
> चाखत जे इक रूप रस, तातें हैं चख' नाम॥

अन्य इन्द्रियों की तरह किसी व्यापार म समस्त रूप स योग देने की आवश्यकता 'नैनों' को नही है, य ता अपन अद्ध भाग स ही बडे बडे कार्यो को कर देत है—

> सिव बिरचि सुरपति सब, नपहू देखे जेन।
> ते मनमोहन बति किए राधा आधे नन॥

राधा तो यहाँ प्रतीक है। किन्तु सारे जग को वश म करन की सामार्थ्य ता प्रत्येक नायिका के आधे दृगों म है —

> जग बस कीनों आपुने, आधी चितवनि आम।
> जो दृग पूरे खोलती, कहा करति तो काम॥

इन 'दृगों' का तो आधा खुलना ही भला है। पूरे खुलने का परिणाम कवि की कल्पना से भी बाहर है। किन्तु य अध मूदो आख मूँदी (छिपी) प्रीति को प्रकट कर देती हैं —

> नद न दन के रूप पर, रीझि रही रिझवारी।
> अध मूँदी अँखियन दई, मूँदी प्रीति उघारि॥

जहाँ आँखो जस दो दो दीपक प्रकाश कर रहे हैं वहा अन्दर की प्रीति प्रकट हुए बिना कैसे रह सकती है —

> एक दीप सों गेह को प्रकट सब निधि होइ।
> मन मे नेह कहाँ दुर जह दृग दीपक दोई॥

प्रेम के प्रकट होते ही आँखों ही आँखों म दूर खडे खडे ही बातें और मनोविनोद होने लगा —

दूरयो खरे समीप को लेत मान मन मोद ।
होते दुहुन के दृगनु ही बतरस हास विनोद ॥

किन्तु लोगों को यह नयनों का मिलना पसन्द नहीं । ज्योंही ये दृग उलझे, त्यों ही कौटुम्बिक क्लेश और दुजनों (स्त्रीत्रा) के हृदय में गांठ पड़ गई । पर नायिका विवश है । नैनों को बहुत समझाया । अपयश होने का डर भी दिखाया पर सब व्यर्थ हुआ —

नैन मिले जे ना रहैं, ना अपजस हिं डरायें ।
प्रीतम आवत देखिकै, मिलत झकाऊ जाय ॥

मिलने को तो आगे आगे बढ़कर जा मिले पर, नेह में अटक कर रूप में जा फँसे और अब इनकी यह दशा है जैसे कोई दुबली गाय कीचड़ में जा फँसे और निकल न सके —

नैना अटके नेह सों गड़े रूप में जाय ।
बहुलें पार निकसें नहीं मनो दूबरी गाय ॥

जहाँ इस प्रकार रूप माधुरी में परस्पर नैन उलझ गये हों वहाँ नायिका का सखियों के सिखाये मानकर बैठना भी स्वाभाविक है । मानिनी को मनाने नायक की दूती आई उसने बहुत समझाया, मनाया । अन्त में पाँव पकड़ कर मान छोड़ने की प्रार्थना भी की किन्तु इसने मान नहीं छोड़ा । इतना मान करने वाली मानिनी क्षण भर में मान छोड़कर प्रिय से हँस हँस कर मिल रही है यह प्रिय की तिरछी चितवन का कमाल है—

कितो कियो पाइन परी, तब तो बोली नाहिं ।
अब सो पियसों हँसि मिली, तिरछी चितवन माहिं ॥

संयोग के पश्चात् वियोग की बारी आई । नायिका की भूख प्यास, सब प्रकार के सुख चैन समाप्त हो गये । नयन ऊर्द्ध बाहु हो गये (खुले के खुले रह गये)—

लाल पिया के बिछुरतें बिछुर गये सब चैन ।
भूख, प्यास, नींदौ गई उर्द्ध बाहु भये नैन ॥

दिन रात प्रिय की बाट देखने लगे नयन ? पर इसमें किसी दूसरे का दोष थोड़े

ही है यह प्रेम की आग किसी अन्य की सुलगाई हुई थोड़े ही है —

नैना बड़ी बलाय हैं पर मुख लाग धाय ।
आग बिरानी लाइके तन मे देत लगाय ॥

अपने हाथों लगाई हुई विरह की पराई आग आहों की गरम हवा से भड़क अवश्य ही इस कोमल तन को जलाकर भस्मसात् कर देती किन्तु ये आँसू इसे ब लेते हैं —

विरह अगनि तन तूल सम, आहिं अथाह समीर ।
भसम होत राखे भले, नैना ही के नीर ॥

नैनों से दिन रात नीर बरसने लगा । 'भये झरझरी नैन । आँसुओं का अन्त नहीं' टूटी नाव में आने वाला पानी कहीं उलीचने से घटता है ?

ज्यों ज्यों नैन उलीचिये करि पलकन की ओर ।
त्यों त्यों टूटो नाव ज्यों भरि भरि आवत नीर ॥

प्रिय का बिछुड़ना ऐसा ही होता है नायिका के नैन आँसू क्या बहा रहे हैं मानों विरह के पुण्यकाल में पलक रूपी अञ्जलि में आँसुओं का जल और बरौनियों की डाभ लेकर काम रूपी ब्राह्मण के तत्त्वावधान में नींद न लेने का संकल्प कर रहे हैं—

पाणि पलक कुस बरनिका जल आँसू द्विज मैन ।
पिय बिछुरत मनु नींद को लेत सकलप नैन ॥

विरह में इस प्रकार रोने वाले नयन जब संयोग में बाण की तरह चलकर जैसे ही लगे वह कह उठा—

द्दगुन लगत बेधत हियहिं विकल करत अँग आन ।
ए तेरे सबतें विषम, ईछन तीछन बान ॥

सब प्रकार के बाणों में विषम और तीक्ष्ण नयन बाणों का असंगत प्रभाव देखिये— लगे तो आँखों में बींध डाला हृदय को और सब अंगों को व्याकुल कर डाला । प्रत्येक शिकारी अपने शिकार पर बाण चलाकर उस शिकार को ढूंढने जाता है पर इन

नयन बाणों की यह विशेषता है कि इनसे बिधा हुआ शिकार स्वयं शिकारी के पास खिंचा चला आता है—

बान बेधि सब बिधे को खोज करति हैं आइ ।
अद्भुत बान कटाच्छ जिहि, बिध्यौ लगै सग आई ॥

इन नैन बाण से बिधे हुए घायल की चिकित्सा भी बताई गई है—

नैन बाण जाको लगै कहियो ग्रौषध काहि ।
कुच-कठोर, पटिया भुजा, अधर पान पथ ताहि ॥

नैन बाण से घायल के लिए स्तनों का सेक करें, लम्बी लम्बी बाँहों की पट्टी बांधें और अधर पान का पथ्य दें ।

इसी नयन बाण के बल ही तो कामदेव जगद्विजयी हो रहा है उसका तथा कथित फूलों के बाणों से काम थोडे ही चलता है—

किय भरोसो नैन को नागर मेरे जान ।
ना तरु क्यों जग जीततो काम फूल के बान ॥

ये जगद्विजयी नयन कभी बाण सदृश तीक्ष्ण होते हैं तो कभी कमल से कोमल भी होते हैं—

प्रन देखें मुद्रित रहें देखे तें प्रति चैन ।
जगत मित्र हैं रावरे जलज हमारे नैन ॥

सूर्य के समान प्रिय के नेत्रों को देखकर ये खिल जाते हैं और उन्हें न देखकर मुकुलित हो जाते हैं ।

ये कमल, केवल दिवा विकासी रक्त कमल ही नहीं हैं रात्रि विकासी इन्दीवर की शोभा भी इनमें देखने को मिली है—

फूल जु फूल देखि ससि, सो इन्दीवर नैन ।
कहत बान मुख चन्द्र तें, ना बिछुर दिन रैन ॥

सामान्य इन्दीवर से इनकी यह विशेषता है कि ये मुख चन्द्र से कभी विलग होते ही नहीं ।

नयनों को मृग की उपमा प्राय दी जाती है और नागरिक लोग मृगो का शिकार किया करते हैं पर ये नयन मृग तो बडे विचित्र हैं जो उलटा नागरिकों का शिकार करते हैं और यह शिकार खेलना इन्हे कामदेव ने सिखाया है—

खेलन सिखये अलि भल चतुर अहेरी मार ।
कानन चारी नन मृग, नागर नरनु सिकार ॥

कमल, मृग, बाण आदि की तरह ही मछली भी नेत्रो का उपमान रही है। चचल नयनों को झीने पट के घूँघट में चमकते हुए देखकर गगाजल म उछलते हुए मछली के जोडे का स्मरण हो आता है—

चमचमात चचल नयन, बिच घूँघट पट झीन ।
मानहु सुर सरिता विमल, जल उछलत जुग मीन ॥

इसी प्रकार झीने अचल की ओट म झलकते हुए नन एक कवि को जाल म से छूटकर उडने को व्याकुल हुए खजन का जोडा दीख पडा—

आली अचल ओट तें झलकि झलकि दृग जात ।
मानहु खजन, जालतें उडिवें कों अकुलात ।

जगल के पशु (मृग), पक्षी खजन, जलचरा म मीन आदि उपमान निपुण रसिकों के लिए आनन्ददायक होंगे। ऐसा ही सोचकर शहरी—पालतू पशु— घोडे, हाथी आदि को भी आँखों के रूप मे प्रस्तुत किया गया— जिस तरह कुछ अडियल घोडे होते हैं उसी तरह ये दृग तुरग लाज की लगाम न मानकर मुहजोरी कर रहे हैं—

मानत लाज लगाम नहिं नक न गहत मरोर ।
होत तोहिं लख बाल के, दृग तुरग मुह जोर ॥

जरा इन अरबी घोडो को भी देखिये जो नई नई चालो से ग्राहकों (चाहनेवालों) का मन राजी कर रहे हैं—

ताजी ताजी गतिन ए, तब तें सीखे नन ।
गाहक मन राजी कर बाजी तेरे नन ॥

सभलिये, घोडों के बाद ये मदमस्त गजराज की तरह प्रिय के नन प्रेम बाजार में छूट गये हैं यदि इनसे बचना है तो अपने नन रूपी दुकानो के पलक रूपी किवाड़ बद

कहके बैठ जाओ—

छूटे हग गज मीत के, बिच यह प्रम बजार।
दीजौ मन दुकान के महुक्म पलक किवार ॥

घोड़े और हाथी सेना के अंग है और वीरों के बिना सेना कैसी?

बोहयत टरत न सुभट लौं रोकि सके कोउ नाहि।
लाखन ही की भोर में आंख उहीं चलि जाहि ॥

वीर जिस प्रकार लाखों की भीड़ को चीर कर अपने लक्ष्य से जा टकराता है, किसी से रुकता नहीं उसी प्रकार य नेत्र भी अपने प्रिय के पास पहुँच जाते हैं।

नना प्यासे रूप के, राखे रहे न ओट।
चतुर सुर या क्यों बचै कर और में चोट ॥

रूप माधुरी के प्यासे कोई ओट न रहते हैं इन्हें कितनी ही भीख दो पर ये लालची ऐसे हैं कि जहां भी रूप देखते हैं वहीं भीख मागने लगते ह—

नैन हमारे लालची क्यों हि लगाऊं सीख।
जह जह देखत रूप कौं, तह तह मागत भीख ॥

इसी लोभ लालच के वश मे इन्होंने व्यापार भी प्रारम्भ किया। भौहों की डांडी, तिलक का कांटा, प्राण के पलने व पुतलियों के बाट वाली तराजू लेकर प्रेम नगर के बाजार में प्रिय की मूरत तोलने लग।

मुंह डांडी कांटो तिलक, प्रान पल पुतरी बाट।
तोलत मूरत मित्र की, नेह नगर की हाट ॥

लेकिन साहूकार महान वाले य नन ऐसे न्यायिया निकले कि मन (मन भर वजन या मन) लेकर पाव (पाव भर या पाव) भी नहीं देते—

साहु कहावत फिरत है चित सरमाए चाव।
तेरे नन न्यायिया मन ल देति न पाव ॥

एक बार इन कबाड़ियों ने मन को गिरवी रखकर रूप रस उधार ले लिया पर उसके पश्चात् प्रेम रूपी ब्याज इतना बढ़ गया कि गिरवी पर रखा मन का छूटना दुर्भिक्ष हो रहा है—

नना मन गहन परयौ, लह्यौ रूप रस लीन ।
भाव ब्याज वारिधि बद्यौ छुटिवो कवन प्रवीन ॥

इन बहुरूपियों का क्या ? आज सेठ बन गये हैं तो कल पलकों की जटा और अजन की भस्म लगाई और बाबाजी बनकर रूप की भिक्षा मागने निकल पड़े—

हग-जोगी पलकें-जटा रमाई-भसम लगाई ।
रूप भीख के लालची जित देखें तित जाइ ॥

और भिक्षा न मिलने पर ननों ने पलक रूपी वस्त्र, दर्शन रूपी भोजन, आस रूपी धन और निद्रा आदि सुखों को त्याग दिया और दिगम्बर होगये—

पलक बसन दरसन असन, जल-वित निस सुख चन ।
ए तजि सुन्दरि स्याम बिनु भये दिगम्बर नन ॥

इस प्रकार का त्याग करने वाले भी चोरी-डाका कर लेते हैं पर वह चोरी चित्त की होती है—

चित-वितु बचतु न हरत हठि लालन हग बर जोर ।
सावधान के बटपरा ए जागति के चोर ॥

इसके अतिरिक्त चोरी की विशेषता यह कि शरीर, धन, भूषण आदि सब छोड़ गये, केवल मन निकाल कर ले गये—

कहो कहा या चोर की चोरी सब तें बाढि ।
तन भूषन सब छाडि क, लीनो मनही काढि ॥

इन प्यारे ननों के विषय में कितना कहा जाय ? इनका वर्णन अनन्त है— ये क्षण मे शाह हैं तो क्षण में चोर । क्षण मे शत्रु हैं तो क्षण म मित्र—

प्यारे ननति की कथन कसे कहो कवित्त ।
छिनक साह छिन चोरटा छिन बरी छिन मित्त ॥

इस प्रकार अनेक भावों को अभिव्यक्त करने वाले इन दोहों का समुचित विषय में विभाजन करना भी नितान्त आवश्यक समझकर कुछ स्थूल वर्गीकरण किया गया है ।

इस सग्रह में बहुत से दोहे ऐसे हैं जिनमें स्पष्टतया एक ही भाव या एक ही विषय वस्तु का वर्णन अभिप्रेत है या विशिष्ट दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण है— उनको

उद्दिपक दीपक के अन्तर्गत ले लिया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ दोहे ऐसे हैं— जिनमें एक प्रमुख प्रकार का वर्ण्य विषय होते पर भी वे अन्य विषय में भी पृथक सत्ता रखते हैं क्योंकि आत्र एक ऐसी इन्द्रिय है जो विभिन्न रसों का स्थान है और एक साथ दो विरुद्ध क्रिया व परिणाम कर सकती है[1] अथवा कई दोहों में तीन-तीन चार चार वस्तुओं या भावों का वर्णन मिलता है। जहां कवि ने विभिन्न भावों या वस्तुओं को एक ही दोहे के कलेवर में सन्निविष्ट करने की चातुरी दिखलाई है, या कवि को वहां कोई सांगो-पांग मूर्ति उपस्थित करनी अभिप्रेत होगी— ऐसे दोहों के वर्गीकरण में महती कठिनता थी। इन प्रकार की परिस्थिति में हमने उन दोहों को 'नयना के नाना भाव' शीर्षक में स्थान देकर सन्तोष करने की चेष्टा की है। इस वर्ग में अनेक नायिकाभेदों के विभिन्न हाव भावों के अनेक अलंकार व चमत्कारपूर्ण उक्तियों के दोहों का समावेश हुआ है।

यद्यपि विभिन्न रसों व अलंकारों के नायिकाभेदों के एवं हावों व भावों के अलग अलग शीर्षक स्थापित किए जा सकते थे परन्तु वैसा करना किसी लक्षण ग्रन्थ में ही उपयुक्त है न कि इस प्रकार के संकलन में। अतएव हमने इस संग्रह में स्थूल वर्गीकरण का ही सुविधानुसार आश्रय लिया है।

इस संग्रह में जिन प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध कवियों के दोहों का चयन हुआ है उनमें कुछ प्रमुख ये हैं—

(१) बिहारी (२) मतिराम (३) रसलीन (४) रसनिधि (५) समन (६) जमला (७) जमाल (८) तुलसी (९) तुरसी (१०) नागरीदास (११) गुमान (१२) नरिन्द (१३) दयाल (१४) कबीर (१५) प्रवीण (१६) वृन्द (१७) मुबारक (१८) मल (१९) वाजिद (२०) पृथ्वीराज (२१) महम्मद (२२) रहीम (२३) हुसन (२४) जगन (२५) बरण (२६ जान (२७) केशव (२८) सबल।

इनके अतिरिक्त कवियों के दोहे भी इस संग्रह की शोभा बढ़ा रहे हैं अतः उन सब ज्ञात व अज्ञात कवियों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापनार्थ उनका पावन स्मरण करते हुए हम सबके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

यद्यपि इस संकलन में विभिन्न ग्रन्थों से सामग्री का चयन किया गया है

१ सन्त और कविन्द्र भूमिका—बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रज

स्पं

कीं

छोड

लण

विमा

विषय

अमिय

हलाहल

मदभरे

भक्त नयन

१

ब्रह्म निगुरण सुरपति सगुरण, सेसहु देखे जे न।
ते मन-मोहन बसि किये, राधा आधे नैन॥

२

सिव बिरचि सुरपति सबै, सेसहु देखे जे न।
ते मन-मोहन बसि किये, राधा आधे नैन॥

३

तीन पैंड जाके अहो, त्रिभुवन मे न समांहि।
धनि राधे राखत्ति तिन्हें, लोयन कोयन मांहि॥

४

तुम गिरि लैं नख पैं धर्यो, हम तुमकों दृग कोर।
इन द्वं में तुम ही कहो, अधिक कियो को जोर?

५

घट बढ इन मे कौन हैं, तुही सांवरे ऐन।
तुम गिरि लैं नख पैं धर्यो, इन गिरधर ल नैन॥

६

दरसन ही को भूख है, होत न कबहूँ मेट।
कैसे नैन अघाइहैं? जाके जीभ न पेट॥

जिस गुणातीत ब्रह्म को सगुण रूप में समस्त देवों का प्रभु कहा जाता है, जिस का अन्त, सहस्रफणों वाला शेष नाग भी न पा सका उसी मन मोहन को राधा ने अर्धोन्मीलित नयन से ही वश में कर लिया। १

भगवान शंकर (तीन नेत्र) ब्रह्मा (आठ नेत्र) विष्णु या इन्द्र (सहस्राक्ष) और शेष नाग (दो हजार नेत्र) ने भी जिन्हें भली प्रकार नहीं देखा, उन्हीं मन मोहन को राधिका ने आधे नयन से वश में कर लिया। २

जिस के तीन पैंड तीनों लोकों में नहीं समाते हैं उसे तुम अपने नेत्रों की पुतली में रख रही हो, हे राधिके, तुम धन्य हो। ३

तुमने तो गोवर्धन पर्वत को नख पर धारण किया है पर मैंने तुमको आँख की कोर पर ही उठा रक्खा है। अब तुम्हीं बताओ, हम दोनों में किसने अधिक महत्व का कार्य किया है। ४

हे स्याम, तुम्हीं बताओ कि तुममें और इन गोपियों में कौन बड़ा है। तुमने तो नख पर केवल गिरि उठा रखा है और इन गोपिकाओं ने गिरधर (गिरराज पर्वत सहित तुम्हें) अपनी आँखों में धारण कर रक्खा है। ५

इन नयनों को दर्शन की भूख लगी ही रहती है जो कभी नहीं मिटती। भला, जिन नयनों के न आम है न पेट, वे कैसे तृप्त होंगे। ६

७

भृकुटी-मटकनि, पीतपट,-चटक, लटकती-चाल ।
चल-चख-चितवनि, चोरि चितु, लियौ बिहारीलाल ॥

८

रूप-धार घनस्याम को, छवि-तरग को झोक ।
प्रेम-प्यास भाजै नहीं, नैननि नान्हो ओक ॥

९

स्याम वरन नैननि लियो, काहेतें कविराज ?
ता दिन तें तनमै भये, देखे दृग ब्रज-राज ॥

१०

अटपटि वात जु पेम की, कहि न परत इह बैन ।
चरण धरत जहं लाडली, लाल धरत तहँ नैन ॥

११

उद्धव, नैननि जो करी, वैरी हू न करायँ ।
उरझे मोहन-वेल सो, सुरझाये नहिं जायँ ॥

१२

वनक हि निरखे है सखी, मोहन भोरे-भोर ।
नैन छबीले छोर को, छिदो करेजे कोर ॥

पीताम्बर की चटक, भौंहों की मटक तथा गति की लटक से एवं चचल नेत्रों की बाँकी चितवन से बिहारी लाल ने मेरे चित्त को चुरा लिया है। ७

घनश्याम की रूप धारा में शोभा रूपी तरगों की पल लग रही है और नयनों की ओक छोटी होने के कारण प्रेम की प्यास ठीक तरह से नहीं बुझ रही है। ८

हे कविराज। इन नयनों का रंग श्याम कैसे हो गया ? (कवि ने कहा) जिस दिन साँवरे ब्रजराज कृष्ण को देखा उसी दिन से ये काले हो गए (श्याममय हो गए) ६

प्रेम की अटपटी बातें वचनों से प्रकट नहीं होतीं (उन्हें क्रियात्मक रूप देना पड़ता है) वृषभानलली जहाँ चरण रखती हैं वहाँ नन्दलाल आँखें बिछाते हैं। (राधा जहाँ जहाँ जाती है कृष्ण की आँखें वहीं पहुँच जाती हैं) १०

हे उद्धव! इन नैनों ने हमारे साथ जैसा व्यवहार किया है वैसा दुश्मन भी नहीं करेंगे। ये मोहन रूपी लता वितान में ऐसे उलझे हैं कि सुलझाने पर भी नहीं सुलझ रहे हैं। ११

श्याम सुन्दर सुन्दर मोहन को यानक देखा तभी से छबीले छाकरे की आँखों की करारी कोर कलेजे में चुभ गई है। १२

१३

दृग लोभी हरि रूपके, लाज छोडि ललचाहिं।
देखें सुख दूनों लहैं, अन देखे अकुलाहिं ॥

१४

अँखियाँ अटकीं स्याम सों, उत गुरु-जन रिपु ओट।
काके आगे खोलिये, मोहन दुख की मोट ॥

१५

मन-मोहन नैनानिको मतो न समुझ्यो जाय।
दरसत हू तरसत रहैं कमल-नैन के भाय ॥

१६

राधा, माधो वदन तन, फिरि फिरि चितवत जात।
जैसे जे आगे चलै, पाछे कूँ फहरात ॥

१७

जगत जनायो जिहि सकलु, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यो आँखिनु सब देखिये, आँखि न देखी जाहिं ॥

१८

हरि देख्यो कहुँ राधिका, तपन-तनूजा-तीर।
इह एकै अपराध तें, व्याकुल सबै सरीर ॥

श्री हरि की रूप माधुरी के लोभी ये नयन लज्जा त्याग कर ललचा रहे हैं। प्रभु को निरख कर तो अत्यन्त सुखी होते हैं और उन्हें बिना देखे व्याकुल हो उठते हैं। १३

आपके साँवरे स्वरूप में (मेरी सखी की) आँखें अटक गई हैं किन्तु उधर गुरुजनों का और शत्रुओं का व्यवधान है इसलिए हे मोहन! इस दुख की गठड़ी को वह किस के आगे खोले? (नायिका आँखें मूँदे ही रखती है) १४

हे मन मोहन! मेरे इन नयनों का अभिप्राय मेरी समझ में नहीं आता। क्योंकि कमल के समान नेत्रों वाले स्वरूप को देखते हुए भी ये तरसते रहते हैं। १५

राधा अपने मार्ग पर चलती हुई मुड़ मुड़ कर माधव के मुख को देख रही है जैसे इसकी आँखें चलती हुई ध्वजा के समान हैं जो चलती तो आगे की ओर है और फहराती पीछे की ओर है। १६

तैने जिसके द्वारा सारे जगत को जाना, उस (चिन्मय परमात्मा) हरि को नहीं जाना। जैसे आँखों से सब कुछ देखा जाता है पर आँखें स्वयं नहीं देखी जातीं। १७

एक दिन राधा रानी ने यमुना के तट पर कहीं कृष्ण को देख लिया बस, इसी एक अपराध से उसका सारा शरीर व्याकुल हो रहा है (कृष्ण का एक दृष्टि में राधा मोहित हो गई फिर संयोगाभाव जन्य व्यथा स्वाभाविक है) १८

१६

हरि छबि-जल जबतें परे, तब तें छिनु बिछुरे न।
भरत ढरत बूडत तरत, रहट घरी लौं नैन॥

२०

"रवि बदौं, कर जोरिकें", सुने स्याम के बैन।
भये हँसौंहे सबन के, अति अनखौंहे नैन॥

२१

कहा लडै़ते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत-पटु, कहूँ मुकटु बनमाल॥

२२

सुन्दर सुखद सुसील अति, सखो सयाने सैन।
बनक हि देखत हो बनै, नट नागर के नैन॥

२३

काजर दयो तो फिर फिरो, सुरमो दियो न जाइ।
एक रमैया रमि रह्यो, दूजो कहाँ समाइ॥

२४

नैनां अंतरि आंचरूँ, निसदिन निरखौं तोहिं।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहिं॥

जब से भगवान के छवि रूपी जल में मेरे नेत्र पड़े हैं तब से एक पल भी उनसे अलग नहीं होते हैं ये रहट के जल पात्र की भांति भरते हैं, ढलते हैं, और डूबते उतराते हैं। १६

'अपने अपने हाथ जोड़ कर सूर्य को प्रणाम करो' इस प्रकार के स्याम के वचन सुन कर गोपिकाओं के खीझे हुए नयन भी, स्वभावतः हँसने वाले हो गये। २०

तूने इन नयनों को लाड़ में इतने क्यों इतराये हैं कि जिससे लाल का बुरा हाल हो रहा है उनकी मुरली कहीं, पीताम्बर कहीं, मुकुट कहीं, और वनमाला कहीं पड़ी है। २१

हे सखि! मनोहर एवं सुख देने वाले व चतुर संकेत करने वाले सुशील नटनागर के नेत्रों की शोभा देखते ही बनती है। २२

आँखों में यदि काजल लगाऊँ तो किरकिरा मालूम पड़ता है और सुरमा तो लगाया ही नहीं जाता क्योंकि इनमें एक ही रमैया रमण कर रहा है अब दूसरी वस्तु कहाँ समायेगी? २३

वह दिन कब आयेगा। हे हरि! आप कब दर्शन दोगे? जिससे मैं उन्हें नयनों में रात दिन निरखती रहूँ। २४

२५

नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झंपेउं ।
ना हौं देखौं और कूं, ना तुझ देखन देऊँ ।।

२६

नैन हमारे जलि गये, छिन छिन लोडं तुझ ।
ना तू मिलै न मैं खुसी, ऐसी वेदन मुझ ।।

२७

नँद-नँदन के रूप पर, रीझ रही रिझवारि ।
अध मूँदी अँखियन दई मूँदी प्रीति उघारि ।।

२८

भरी अमित छवि तो दृगन, सब जग बोलति साखि ।
मेरे हू नान्हे-मनहि, दृग-कोयन बिच राखि ।।



हे प्रिय, तुम नयनों में आओगे वैसे ही मैं आँखें मूँद लूँगी, फिर न तो मैं किसी दूसरे को देखूँगी और न तुम्हें किसी को देखने दूँगी। २५

हमारे नयन विरह में जल चुके हैं फिर भी क्षण क्षण में तुम्हारी लालसा रखते हैं किन्तु न तो तुम मिलो और न मुझे प्रसन्नता हो। यह वेदना मुझे यों ही सताती रहेगी। २६

नन्दलाल के रूप पर रीझने वाली राका रही है इस बात को अर्थात् छिपी हुई प्रीति को इन अध मूँदी आँखों ने प्रकट कर दिया। २७

सारा संसार साक्षी है कि तेरे लोचनों में अपार छवि भरी पड़ी है, तो इन नेत्रों की पुतलियों में मेरे भी छोटे से मन को स्थान दे दे। २८

नयनो की परिभाषा

२९

आपु लगति वेचति मनहिं, 'रसनिधि' कर बिनु दाम ।
नैननि मे नै नाहिनें, यातें नैना नाम ।।

३०

छीनीं छबि मृग मीन की, कहौ कहां की रीति ।
नाम हि मे नै नाहि तौ, करें नैन का नीति ।

३१

जो कछु उपजत आइ उर, सो वे आँखें देति ।
रस निधि आँखें नाम इन्ह, पायौ अरथ समेति ।।

३२

और रसन लै जान हों रसना हू अभिराम ।
चाखत जे इक रूप रस तातें है 'चख' नाम ।।

लगालगी तो आप करते हैं और बिना दाम आदि लिए ही बिचारे मन को बेच देते हैं, इन नैनों में नै (नय=नीति, न्याय) नहीं है न । इसीलिए इनका नाम 'नैन' है (नै+न) २९

जिन के नाम में ही नै नहीं है तो फिर नैन कौनसी नीति पर चल सकते हैं। कहिए, यह कहाँ की बात है कि इन्होंने मृगों और मछलियों की शोभा को चुरा लिया है। ३०

जो कुछ भी हृदय में भाव उत्पन्न होता है उसे यह कह देती हैं, रसनिधि कहते हैं कि इसलिए इनका आँखें नाम सार्थक है (आखना=कहना, आँखें=कहें) ३१

मधुर, अम्ल, कटु, कषाय, लवण, तिक्त आदि रसों का स्वाद तो जिह्वा भी बता सकता है किन्तु 'रूपरस' को तो केवल मात्र नेत्र ही 'चख' सकते हैं इसीलिए इनका नाम 'चख' है। ३२

नयनों की भाषा

३३

नैन कही मैना सुनी, उत्तर दीनौ नैन।
नैन नैन सौं मिलि रहे, कहै कौन सौं बैन॥

३४

नन रसीले रसिक अति, नैना नैन मिलन्त।
अनजाने सो प्रीति गुन, पहिले नैन करन्त॥

३५

जगत समझिक मन रहे, स्रवन जीभ रस बैन।
बिछुरन-दुख-दिन दहत हैं, नीकें जानत नैन॥

३६

जगत समुझि है मन स्रवन, रसना रस के बैन।
लज्जा रूप सनेह कौं नीकें समुझत नैन॥

३७

सुनत निहारत रूप गुन, केसव एक प्रमान।
कबहुँ स्रवन ए लोयना, कबहु लोयना कान॥

३८

भलौ बुरौ पहिचानियें, स्रवन सुनत ही बैन।
ज्यों मन मे की स्यामता, कहे देत हैं नैन॥

नेत्रों की कही हुई बात (इशारा) नेत्रों ने सुनी और उत्तर भी उन्होंने दे दिया तत्पश्चात् दोनों के नयन परस्पर मिल गए। अब कौन किससे कोई बात कहे? ३३

रसीले नयन रसिक नयनों से शीघ्र ही जा मिलते हैं और आश्चर्य है कि अपरिचित व्यक्ति से भी प्रेम प्रारम्भ कर देते हैं। ३४

जगन कवि कहते हैं कि मन तो समझाने से समझ जाता है और कान प्रिय की बातें सुनकर व जीभ प्रिय की बातें करके रह जाती है परन्तु विरह का दुख किस प्रकार जलाता है, इसे नयन ही भली भांति जानते हैं। ३५

जिह्वा के स्वाद को मन और प्रेमवाक्यों को तो कान भी समझ लेते हैं किन्तु जगन कहते हैं कि लज्जा की दशा में अन्त स्थित स्नेह को तो केवल नेत्र ही भली प्रकार समझ पाते हैं। ३६

प्रिय के रूप और गुण को देखने और सुनते हुए कभी तो यह कान नेत्र हो रहे हैं और कभी ये नेत्र कान हो रहे हैं। केशव कहते हैं ये एक साथ दोनों कार्य करने को आतुर हैं। ३७

जैसे बाहरी भलाई बुराई की पहचान कानों से वचन सुनकर की जाती है वैसे ही मन की कलुषता को नयन बताते हैं। ३८

३६

नैन नैन की जानही, नैन नैन की हेत ।
नैन नैन के मिलत ही, नैन नैन कहि देत ॥

४०

भीतर के गुन औगुना, अँखियाँ देत लखाइ ।
अैन देखते पाइये, जैसो जहि सुभाइ ॥

४१

सबल कहै बैठी सभा छानी रहै न हेत ।
सैन-बैन मे परखिये, नैन ऐन कहिदेत ॥

४२

प्रीति प्रकट वा प्रीय की, ऐन नैन मे होति ।
जैसे पट फानूसकै दुरति न दीपक जोति ॥

४३

हँसत नहीं बोलत नहीं रस न जनावत सैन ।
रूखे ही पहिचानिये, नेह चीकने नैन ॥

४४

कोरि जतन कीजै तऊ नागर-नेह दुरै न ।
कहै देत चित चीकनो नई रुखाई नैन ॥

आँखें ही आँखों की व्यथा पहचानती हैं और आँखों का प्यार भी आँखों से ही होता है। दो आँखें परस्पर मिलते ही अपनी सारी बातें कह देती हैं। ३९

हृदय गत गुण अवगुणों को आँखें स्पष्ट बतला देती हैं किसी के भी स्वभाव को आँखों द्वारा जाना जा सकता है। ४०

सखल कहते हैं कि सभा में बैठी हुई नायिका का प्रेम छिपाने पर भी नहीं छिप रहा है। यदि देखना है तो इसारे रूपी गज़ा की ओर ध्यान दीजिये, क्योंकि आँखें हृदय के भावों को ज्यों का त्यों कह देती है। ४१

जैसे फानूस के आवरण में दीपक की लौ नहीं छिप सकती वैसे ही उस प्रिय की प्रीति नयनों से प्रकट होती है। ४२

न तो हँसती है, न बोलती है, और न संकेतों से ही प्रेम प्रकट कर रही है किन्तु इस रूपी नायिका के प्रेम को स्नेह से चोखने हुए नयनों द्वारा पहचाना जा सकता है। ४३

करोड़ों उपाय कीजिए फिर भी नागर का प्रेम नहीं छिपता क्योंकि चोखने चित्त की कथा नवीन (बनावटी) स्याही धारण की हुई आँखें कह देती है। ४४

४५

तूं जु दुरावति हैं सखी, मन मोहन कौ हेत।
चितवनि में चित पाइय, आंखें साखें देत ॥

४६

जीभ कसौटी स्वाद को, स्रवन कसौटी बैन।
बास कसौटी नासिका, रूप कसौटी नैन ॥

४७

मिलि उनसों मनसों मिलैं, दूत गान के कान।
नैंन रूप के दूत हैं, पूरन इहै प्रमान ॥

४८

भावतौ अन भावतौ, नैना ही कहि देत।
एक हिं देखे बल उठैं, एकहि वलि बलि लेत ॥

४९

तुरत सुरत कैसे दुरत, मुरत नैन जुरि नीठि।
डौंडी दे गुन रावरे, कहैं कनौठी दीठि ॥

५०

कर-धमनी कर टेक क, कहत भिषज गति-गात।
यों ही चतुर चितौनि में, चितत चित्त की बात ॥

हे सखि ! तूं जो मनमोहन के प्रेम को छिपा रही है वह तेरी चितवन में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। उसकी साक्षी आँख दे रही हैं। ३५

जैसे स्वाद के लिए जीभ, वचनों के लिए कान, गंध के लिए नाक कसौटी है वैसे ही रूपकी कसौटी नयन हैं। ४६

जैसे गाने के दूत कान होते हैं वैसे ही यह प्रमाणित है कि रूपके दूत नयन होते हैं जो पहले उनसे मिलकर फिर मन से मिल जाते हैं। ४७

प्रिय एवं अप्रिय के विषय में नयन स्पष्ट कह देते हैं क्योंकि एक को देखने पर तो वे जल उठते हैं और एक को देखकर बलिहार होने लगते हैं। ४८

यद्यपि कठिनता से जुड़ने वाली दृष्टि शीघ्र ही मुड़ जाती है फिर भी सुरत की सुरत कैसे छिप सकती है नजर चुराने पर भी आपकी अपराधी आँखें आपके गुणों को, ढिंढोरा पीट कर कह रही हैं। ४६

जैसे हाथ की नाड़ी पर हाथ रखकर शरीर की स्थिति वैद्य बतलाता है वैसे ही चतुर व्यक्ति विरागत बात को एक चितवन में ही जान लेते हैं। ५०

५१
ज्यों जल सींचत पेड़तें, पातन प्रगटत आइ।
जगत जीव को नेहरा, आंखिन ही झलकाइ॥

५२
लाख लोग मे जानिए जाके हिरदै हेत।
नेह नाह को क्यो दुरै, नैन दोउ कह देत॥

५३
आये जोबन के सुनो, जो गति कीन्ही मंन।
तिया अंग के भेद सब, कसबाती कहैं नैन॥

५४
प्रेम दुराये ना दुरै, नैना देहिं बताय।
छेरी के मुँह री सखी, क्यों कर कुम्हड़ो माय॥

५५
एक दीप सो नेह को, प्रगट सबै निधि होइ।
मन मे नेह कहाँ दुरै, जहँ दृग दीपक दोइ॥

५६
नैना देत बताइ सब, हियकौ हेत अहेत।
ज्यों नाई को आरसी, भली बुरी कहि देत।

५१
ज्यों जल सींचत पेड़तें, पातन प्रगटत आइ।
जगन जीव को नेहरा, आंखिन ही झलकाइ॥

५२
लाख लोग मे जानिए जाके हिरदै हेत।
नेह नाह को क्यो दुरं, नंन दोउ कह देत॥

५३
आये जोबन के सुनौ, जो गति कीन्ही मंन।
तिया अग के भेद सब, कसबाती कहैं नंन॥

५४
प्रेम दुराये ना दुरं, नैना देहि बताय।
छेरी के मुंह री सखो, क्यो कर कुम्हडो माय॥

५५
एक दीप सो गेह को, प्रगट सबं निधि होइ।
मन मे नेह कहां दुरं, जहं दृग दीपक दोइ॥

५६
नंना देत बताइ सब, हियको हेत अहेत।
ज्यों नाई को आरसो, भली बुरी कहि देत।

जगन कवि कहते हैं कि जैसे वृक्ष में सींचा हुआ जल पत्तों में प्रकट होकर दीखता है वैसे ही हृदय का प्यार आँखों में झलक पड़ता है। ५१

जिसके हृदय में प्रेम होता है वह तो लाखों लोगों में भी ज्ञात हो जाता है। मन प्रिय का स्नेह कैसे छुपे जब कि दोनों नयन स्पष्ट कह देते हैं। ५२

यौवन के आने पर कामदेव ने जो दशा की है वह सुनो ! नायिका के मन के सारे रहस्य को आँखें कह रही हैं। ५३

हे सखि ! जैसे बकरी के मुँह में कुम्हड़ा नहीं समा सकता उसी प्रकार प्रेम भी छिपाने से नहीं छिप सकता उसे आँखें प्रकट कर ही देती हैं। ५४

जब एक दीपक से घर का सारा खजाना प्रकट होकर स्पष्ट दिखाई देने लगता है तो जहाँ नयन रूपी दो दो दीपक हों वहाँ मन में छिपाया हुआ प्रेम कैसे छिपा रह सकता है ? ५५

हृदय गत प्रेम या बैर को ये नयन वैसे ही स्पष्ट कर देते हैं जैसे नाई की आरसी चेहरे की भलाई बुराई को। ५६

५७

नैना छवि की आरसी, करता गढी अनूप ।
सकल अग का जान कहि, प्रगटत तामे रूप ॥

विधाता ने यह नैनों का मनोहर दर्पण बड़ा ही अनुपम बनाया है। जानकवि कहते हैं कि जिसमें सारे अंगों का रूप प्रकट हो जाता है। ५७



नयनो के नाना भाव

५८

नैन मिले तो कहा भयो, (जो) मनवा नहीं मिलत ।
अम्बर घटा जु ऊनमे, (तो) सरवर नाहि भरत ॥

५९

नैना मिल्या सु मन मिल्या, मन मे मिल्या सु मित्त ।
जिस गढ का भेद्र मिल्या, सो गढ लिया निचित्त ॥

६०

जमला बैठ्यौ चौंतरै, नयण गये टसकाइ ।
अगूठी कर ही रही, गया नगीना हाइ ॥

६१

नैना केरी प्रीतडी, जे कर जाणं कोय ।
जो सुख नैणां नीपजै, ते सुख सेज न होय ॥

यदि मन नहीं मिला तो केवल आँखों के मिलने से कोई लाभ नहीं। आकाश में घटाओं के घिर आने मात्र से तालाब नहीं भरते। ५८

नयनों के मिलते ही उसका मन भी आ मिला और हमारे मनका सच्चा मित्र बन चुका है, अतः जिस किले का अंतरंग भेदिया हम से मिल गया है उस गढ़ को तो अब निश्चित प्राप्त किया ही समझो। ५९

सौन्दर्य को देख कर चौतरे पर बैठे जमना के नयन वहीं चले गये (और वह यहीं का यहीं रहा) जैसे अंगूठी तो हाथ में ही रह गई हो और नगीना निकल कर गिर पड़ा हो। ६०

कोई नयनों से प्रेम करता हो तो जाने? जो आनन्द नयनों से उत्पन्न होता है वह सुख सेज पर भी नहीं मिलता। ६१

६२

रस सिंगार मञ्जन किये, कञ्जनु भञ्जनु दैन।
अञ्जनु रञ्जनु हूँ बिना, खञ्जनु गञ्जनु नैन॥

६३

नैन सलौने मोहिने, लागि न जानैं छूटि।
जैसे चींटा की गहन, रहत सीस तें टूटि॥

६४

लोचन नैक अघात नहिं, देखत प्रीतम लोग।
ज्यों सुपनैं पानी पियैं, प्यास न बुझत असोग॥

६५

सरल तरल तीखे कुटिल, अरुण असित सित नैन।
वारौं खञ्जन, कमल, मृग, और मीन, कवि बैन॥

६६

मृगज लजे खंजन लजे, कंज लजे छवि छीन।
दृगनि देख दुख दीन ह्वै, मीन भये जल लीन॥

६७

लोचन चारु चकोर सम, चातक कुमुद तरंग।
अंजन जुत अलि काम सर, खंजन मीन कुरंग॥

शृंगार रस के हाव भाव, कटाक्ष आदि में निष्णात ये नयन कमलों का मान भंग करने वाले हैं और अंजन लगाये बिना स्वाभाविक रंग से ही खंजन पक्षी को तिरस्कृत करते हैं। ६२

जैसे चींटा अपने सिर से टूट जाने पर भी अपनी पकड़ को नहीं छोड़ता वैसे ही मोहित करने वाले सलोने नयन लग जाने के बाद छोड़ना नहीं जानते। ६३

प्रिय जन के दर्शन से ये नयन वैसे ही नहीं अघाते जैसे स्वाभाविक प्यास स्वप्न में पानी पीने से नहीं बुझती। ६४

इन सीधे, चपल तीखे, टेढ़े, लाल, काले, और श्वेत नयनों पर खंजन, कमल, मृग, मीन, और कवि वाणी को मैं बलिहार करता हूँ। ६५

तेरी आँखों को देखकर हरिण, शावक एवं खंजन लज्जित हो गये और कमल भी शोभा हीन हो गये। मछलियाँ भी दीन और दुखी हो जल में जा छिपी। ६६

सुंदर नयन चकोर, चातक, नीले कमल और तरंग के समान हैं और ये अंजन युक्त होने पर भ्रमर, काम बाण, खंजन, मछली और हरिण के समान हैं। ६७

६८

वारौं बलि तो दृगनु पर, अलि खंजन मृग मीन ।
आधो दीठि चितौन जिहि, किये लाल आधीन ॥

६९

नलिन मलिन किय नागरी, तेरे लोचन लोल ।
अरु चकोर चेरे किये, लिये अमोले मोल ॥

७०

कहत सबै कवि कमल से, मो मत नैन पखानु ।
नातरु कत इन बिय लगत, उपजतु बिरह कृसानु ।

७१

झूठे जानि न सग्रहे मनु मुहं निकसे बैन ।
याही तैं मानहु किये, बातनु कौं बिधि नैन ॥

७२

मोती पिय के कान मे, किहि विधि खरे कंपाहिं ? ।
तिरछी चितवनि तें डरे मृति [illegible] जाहिं ॥

ए पलकें भइ बोझ
नैनन मे प्रीतम

हे सखि ! तेरी आँखों पर मैं बलिहारी जाती हूँ और भ्रमर, खजन, हरिण, मछली इन सबको वारती हूँ। क्योंकि जिनकी अधों मीलित चितवन ने ही लाल को वश में कर लिया। ६८

हे नागरी ! तेरे चचल नयनों ने कमलों को मलिन कर दिया चकोरों को सेवक बना लिया और बिचारी बीर बहूटी को तो मोल ही ले लिया है। ६६

कवि तो सारे ही इन्हे नयन के समान बताते हैं परन्तु मेरे मत में तो ये नयन पत्थर हैं यदि नहीं ? तो फिर इन दिनों के लगन से (टकराने से) विरह अग्नि क्यों पैदा होती है ? ७०

मुँह से निकले हुए वचनों को असत्य या उच्छिष्ट समझ कर मन ने ग्रहण नहीं किया इसीलिए मानों विधाता ने प्रेम वार्ता करने को नयनों की रचना की है। ७१

प्रिय के ध्यान में पड़ने हुए मोती क्या काँप रहे हैं ? इसलिए कि नायिका की तिरछी-नीची चितवन से डर रहे हैं कि कहीं हम फिर से न बेधे जायगे। ७२

ये पलकें पथा सा बन कर इस प्रकार चाह से बारबार झपक रही हैं जैसे आँखों में बसे हुए प्रीतम को पखा झला जा रहा हो। ७३

७४

तन मेरो सेंवल रुई, चकमक पियके नैन ।
पल झपकत चिनगें उठे, सिलगावत मनु मैन ॥

७५

नैन नदी औ पुल तिलक, नेह नीर तिहँ माँहि ।
मन-गयद उतरत गिरचो, फिरि करि निकस्यों नाँहि ॥

७६

प्रीत तुम्हारी पजरा, नैन तुम्हारे छैल ।
मन जु हमारे सिंह कौं, बाँधि लियो तुम गल ॥

७७

नैन महल वरुनी सु चिक, पुतरी मसनद साज ।
तिल तकिया तामे सु मन, दे बैठो महाराज ॥

७८

मान सरोवर पेम जल, रुप सु लहरें लेत ।
नैन पियासे दरस को, घूँघट घाट न देत ॥

७९

भुहें गिलोल गोलक नयन, अजन तती जान ।
पल-किटका पछी मनहु, मारत तिवरी तान ॥

प्रिय के नयन चकमक हैं अत पलक झपकते ही चिनगारियाँ उठने लगती हैं और मानों कामदेव सेमल रुई जैसे मेरे शरीर को सुलगा देता है। ७४

नयन रूपी नदी मे नेह रूपी जल भरा हुआ है और तिलक रूपी पुल बँधा हुआ है इस नदी में मन रूपी हाथी ऐसा गिरा कि वापस नहीं निकला। ७५

हे छला ? तुम्हारी प्रीति पिंजडे के तुल्य है उसमे हमारे मन रूपी सिंह को तुमने सामने ही म नयनो से बाँध लिया। ७६

नन रूपी महल म बरौनियो के चिक लटके हुए हैं और पुतलियो के बिस्तरे बिछे हुए हैं उसम तिल का तकिया है, हे महाराज ! उसमे अपना मन लगाकर बैठ जाओ। ७७

प्रेम जल भर मानके सरोवर म रूप की तरगें उठ रही हैं और मेरे नेत्र दर्शन के प्यासे हैं किन्तु घूँघट घाट नही दे रहा है (घूँघट के कारण मानवती के रूप सौन्दर्य का नयनों से पान नही किया जा सकता है।) ७८

नेत्र क्या हैं, कोई मन पक्षी को मारने के लिए गुलेल हैं। भौंह रूपी गुलेल में नयन रूपी गोली है और कज्जल की रेखा ही रस्सी है त्यौरियो को तानना ही गुलेल घुमाना है। एव पलक जहाँ फक्क का काम करती हैं। ७९

८०

नैना प्रिय के नाग हैं, पलक पटारा मात।
खोलत हियको डसिगये, चढी लहरि जिय जात॥

८१

नागिन पुतरी नैन की, रही कौंढरी खाइ।
बैरिन भूखी प्रान की, देखति ही डस जाइ॥

८२

देखि परस्पर दम्पती, दृगनि मूँदि रस लेत।
मनहु एक की एक छबि, नैक न निकसन देत॥

८३

रह्यौ चकितु चहुँधा चितै, चितु मेरौ मति भूलि।
सूर उयें आए रही, दृगनु साँभ सी फूलि॥

८४

प्रीत लगी अति पीय सों, बिनु देखे कल नाहि।
बे बे टक लागी रहें, चौंक सोवन माहि॥

८५

सगति दोष लगै सबै, कहे जु साँचे बैन।
कुटिल बक भ्रू सग तें, भये कुटिल गति नैन॥

प्रिय की आखें क्या हैं मानों पालतू नाग हैं जो पलकों की पिटारी में रहते हैं। पलक पिटारी खोलते ही हृदय को डस गये हैं और अब इस जीवमें जहर की लहर चढी जा रही है। ८०

नेत्रों की पुतली नागिन के समान यत्न करके बैठी हुई है यह प्राणों की भूखी बैरन देखते ही डस लेती है। ८१

प्रेमी युगल परस्पर एक बार देख कर आँखें मूँद कर आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। मानो एक दूसरे की रूप छवि को आँखों से जरा भी निकलने देना नहीं चाहते। ८२

सूर्योदय के समय आप घर आये हो, किन्तु आपकी आँखों में साझ सी फूल रही है इसलिए मेरा चित्त मति भ्रम में पड़ कर जाग और चकित होकर देख रहा है (कि सूर्योदय वेला है या सूर्यास्त वेला ?)। ८३

प्रीतम से इतनी प्रीत होगई कि उन्हे देखे बिना इन आँखों को चैन नहीं है ये टकटकी लगाये रहती हैं और सोते वक्त चौंक पड़ती हैं। ८४

यह सत्य है कि संगति का प्रभाव सब पर पड़ता है अतएव टेढी भौंहो के संग से ये नयन भी टेढी चाल वाले होगये हैं। ८५

८६

सब अंग करि राखी सुघर, नाइक नेह सिखाइ।
रस जुत लेति अनत गति, पुतरी-पातुर-राइ॥

८७

फूले फदकत लै फरी, पल, कटाच्छ-करवार।
करत बचावत विय नयन, पाइक-घाइ हजार॥

८८

परी बाल मुख-चन्द मे, विरह-राहु को छाँह।
फँ दृग-दान छुडाइयें,सुकृत हेतु करि नाह॥

८९

असिस देत द्वारे खरो, दान लेत धर सीस।
मो से महा गरीब को, चितवन ही बकसीस॥

९०

ढरे ढारले हीं ढरत, दूजें ढार ढरैं न।
क्यो हू आनन आन लों, नैना लागत नैन॥

९१

चितवत जितवत हित हियें, कियें तिरीछे नन।
भीज तन दोऊ कँपे क्यों हूं जप निवरै न॥

नेह नायक के द्वारा सिखलाकर सर्वाङ्ग सुघर कर रखी गई आँखों की पुतली पातुर अनेक प्रकार की रस भरी गतें (गतियाँ) लेती है (शिक्षित नर्तकी की तरह कई हाव भाव दिखलाता है) । ८६

फूले हुए नायक नायिका के नयन रूपी पदल सिपाही पलक रूपी ढाल और कटाक्ष रूपी खड्ग लेकर फुदक फुदक कर हजारों प्रकार के घात प्रतिघात करते हैं और बचाते हैं । ८७

बाला के मुख चद्र पर विरह राहु की छाया पड गई है अत धर्म के लिए नयनों का दान देकर उसे विरह राहु से छुडाइये । ८८

हे नायिका ! मैं द्वार पर खडा हुआ आशीर्वाद दे रहा हूँ और तुम्हारा दिया हुआ दान शिर झुकाकर लूँगा । मेरे जसे महा गरीब के लिए तुम्हारी एक तिरछी चितवन ही बहुत बडा दान होगी । ८९

जिस द्वार पर मेरे नयन ढल गये हैं उसी पर ढलते हैं दूसरी द्वार पर नहीं ढलते । किसी प्रकार भी अन्य आनन से झुककर नही लगते (जिस पर रीझ गये हैं वहीं रीझते हैं अन्यत्र नही) । ९०

तिरछे नयनो से देखते हुए और एक दूसरे के प्रति हृदय मे प्रेम जताने हुए दोनों भीग हुए काँप रहे है पर दोनो का जप समाप्त नही हो रहा है । ९१

८६

सब अँग करि राखी सुघर, नाइक नेह सिखाइ।
रस जुत लेति अनंत गति, पुतरी-पातुर-राइ॥

८७

फूले फदकत लै फरी, पल, कटाच्छ-करवार।
करत बचावत विय नयन, पाइक-घाइ हजार॥

८८

परी बाल मुख-चन्द मे, विरह-राहु की छाँह।
कै दृग-दान छुडाइयै,सुकृत हेतु करि नाह॥

८९

असिस देत द्वारे खरो, दान लेत धर सीस।
मो से महा गरीब को, चितवन ही बकसीस॥

९०

ढरे ढारते हीं ढरत, दूजे ढार ढरैन।
क्यो हू आनन आन सौं, नैना लागत नैन॥

९१

चितवत जितवत हित हियें, कियें तिरीछे नैन।
भीजें तन दोऊ कँपै क्यो हू जप निबरै न॥

नेह नायक के द्वारा सिखलाकर सर्वाङ्ग सुघर कर रखी गई आँखों की पुतली पातुर अनेक प्रकार की रस भरी गतें (गतियाँ) लेती है (निश्चित नर्तकी की तरह कई हाव भाव दिखलाती है) । ८६

फूले हुए नायक नायिका के नयन रूपी पदल सिपाही पलक रूपी ढाल और कटाक्ष रूपी खड्ग लेकर युद्ध कृत्य कर हजारों प्रकार के घात प्रतिघात करते हैं और बचाते हैं । ८७

बाला के मुख चन्द्र पर विरह राहु की छाया पड गई है अत धर्म के निए नयनों का दान देकर उसे विरह राहु से छुडाइये । ८८

हे नायिका ! मैं द्वार पर खडा हुआ आशीर्वाद द रहा हूँ और तुम्हारा दिया हुआ दान सिर झुकाकर लूँगा । मर जैसे महा गरीब के लिए तुम्हारी एक तिरछी चितवन ही बहुत बडा दान होगी । ८९

जिस द्वार पर मरे नयन ढल गये हैं उसी पर ढलते हैं दूसरी द्वार पर नहीं ढलते । किसी प्रकार भी अन्य आनन से झुककर नहीं लगते (जिस पर रीझ गये हैं वहीं रीझते हैं अन्यत्र नहीं) । ९०

तिरछे नयनो से देखते हुए और एक दूसरे के प्रति हृदय में प्रेम करते हुए दोनों भीगे हुए काँप रहे हैं पर दोनों का जप समाप्त नहीं हो रहा है । ९१

६२

सजनी सब जग छोड़ मन, लगत कान्ह पै धाइ।
ज्यों तमु तजि गति नैन को, लगत उजारे जाइ॥

६३

तपति बुझी तन कामकी, भयौ सकल सुख चैन।
प्रीति बढ़ी कवि मल कहै, मिले नैन सो नैन॥

६४

देखत रूपहि थकित ह्वै, करी बसीठी नैन।
दुहुन नेहु मिलि वढि चल्यो, सम चतुराई नैन॥

६५

नैन लगे तिहि लगनि जु न छुटे छुटैं हू प्रान।
काम न आवत एक हूं, तेरे सैक सयान॥

६६

ऐंचति सी चितवनि चितै, भई ओट अलसाई।
फिरि उभकन कौं मृगनयनि, दृगनि लगनिया लाइ॥

६७

अनियारे भारे अरुन, कजरारे कल वाम।
वा चख चाहनि चाहको, मो चख सदा सकाम॥

हे सखि ! मेरा मन सारे संसार को छोड़कर सीधा दौड़कर कन्हैया पर ही टिकता है, जैसे समस्त अन्धकार को छोड़कर ये आँखें प्रकाश पर जा ठहरती हैं। ६२

कवि मत कहते हैं कि आँखों से आँखें क्या मिलीं वियोग के कारण शरीर को जलाने वाली उष्णता शीतल होगई, और सारे सुख प्राप्त होगये एवं अनुराग बढ़ गया। ६३

सौन्दर्य को देखते देखते आँखें अपलक (स्थिर) होगई और फिर उन्होंने दौत्य-कर्म (संकेत आदि) शुरू कर दिया। दोनों की चतुरतावश दोनों का स्नेह मिलकर बढ़ने लगा। ६४

उसकी लगन में लगे हुए ये नयन प्राण छूटने पर भी नहीं छूट सकते। तेरी सकड़ों सयानी बातों में से एक बात भी काम नहीं आरही है। ६५

वह मृगनयनी मुझे आकर्षक चितवन से देखती हुई, मेरे नयनों में "एक बार शायद फिर वह उझककर देखेगी" इस प्रकार की अभिलाषा लगाकर अलसाकर आड़ से छिप गई। ६६

नायिका के तीखे तथा अलसाये हुए लाल एवं काजल वाले सुन्दर बाँके उन नयनों में चाह है या नहीं, पर मेरे नयन तो सदा कामना वाले हैं। ६७

९८

अनियारे भारे मदन, लाज भरे सुख सैन।
काहू धरी न छिन पलक, हिय तें टर न नैन॥

९९

अमिल रहें नहिं पल मिलें, देत न आवें मैन।
चित्र मिटें मति मित्र को, रहे रूप भरि नैन॥

१००

तनिक किर किरी जो परै, कर मोंडत जिय जाय।
देखो अचरिज पेम को मूरति नैन समाय॥

१०१

बड़ो मद अरविंद-सुत, जिहिन पेम पहिचान।
पिय-मुख देखत दृगन कों, पलक रची विधि आन॥

१०२

रही अचल सी ह्वै मनो, लिखी चित्र की आहि।
तजै लाज, डर लोक कौ, कहाँ विलोकति काहि॥

१०३

अरुझे दृग सरुझे नहीं, नहीं रहत नहि चैन।
बहुतें कर देख्यो अली, मो ढिग पिय आवै न॥

तीखी ग्रनीवाले, काम के कारण भारी, किन्तु लाज से भरे मुख के श्याम वे नेत्र, किसी घड़ी में पल भर को भी हृदय से नहीं टलते हैं। ९८

ये आँखें मित्र के रूप से (ऊपर तक) भरी हुई हैं अतः पलक नहीं लगते हैं और न इशारा ही कर पाती हैं क्योंकि कहीं मित्र का चित्र न मिट जाय ? ९९

आँख में जरा सा रज कण पड़ने से ही बड़ा कष्ट होता है और हाथ से मसलते मसलते हैरान हो जाते हैं। परन्तु प्रेम का आश्चर्य तो देखो कि प्रिय की मूरत, आँखों में बेखटके समा जाती है। १००

विधाता भी बड़ा मन्द-बुद्धि निकला, जिसे प्रेम की कोई पहचान नहीं। प्रिय मुख को निहारने वाली आँखों में जिसने पलक बनाई। १०१

वह देखो, जड़ पदार्थ सी हो रही है मानों चित्र में लिखी मूर्ति हो। लज्जा और लोक भय को छोड़कर (वह यदि तुम्हें नहीं देखती है तो) फिर वह कहाँ और किसको देख रही है ? १०२

हे सखि ! सारे उपाय करके मैंने देख लिए परन्तु प्रिय मेरे पास नहीं आये (अन्त में तो थककर बैठ गई) किन्तु ये उलझे हुए नयन सुलझे नहीं रह हैं इसीलिए ये चैन से नहीं बैठते। १०३

१०४

देखत कछु कौतिग इतै, देखौ नेकु निहारि।
कब की इक टक डटि रही, टटिया अँगुरिन फारि॥

१०५

साचो प्रीति लखी दृगनि, सरवर कै इक चित्त।
टूक टूक छाती भई, बिछुरे पानिप मित्त॥

१०६

जे नैना न सुहावई, ते नित रहे हुजूरि।
जे इन नैननि मे बसे, ते इन नैनन दूरि॥

१०७

तलपि सेज सकलप किय, तलफति राति बिहाति।
पलक न पल सो पल लगै, अलप कलप सम जाति॥

१०८

जग बस कीनो आपुने, आधी चितवनि वाम।
जो दृग पूरे खोलतो, कहा करति तो काम॥

१०९

चितवनि तेरी अट पटी, भामिनि टेढे बैन।
मन की गति जन क्यो लहैं, हार रहे जब मैन॥

हे नायक ! कुछ इधर का भी कौतुक देखते हो ? जरा ध्यान देकर देखो तो सही, वह मत्र से टट्टी की अंगुलियो से फाडकर तुम्हारी ओर एक टक देखती डटी हुई है। १०४

•

इन आँखों ने सच्चा प्रेम तो एक मात्र सरोवर के हृदय मे देखा है। अपने मित्र जल के बिछुडने पर जिसका हृदय टुकडे टुकडे (विदीर्ण) हो जाता है। १०५

जो इन नयनों को अप्रिय हैं व तो नित्य सामने उपस्थित रहते हैं और जो इन नयनों मे बस गये हैं वे आज इनसे दूर हो गये हैं। १०६

श्रेष्ठ शय्या का सकल्प ले लिया है (छोडदी है) तडपते हुए ही रात बीतती है एक पल भी पलक से पलक नही लगता है। तेरे बिना अल्पकाल भी कल्प के समान बीतता है। १०७

सुन्दरि ! तुमने आधी चितौन से ही सारा ससार वश में कर लिया अगर पूरी आँख खोलती तो न जाने क्या काम करती ? १०८

हे भामिनि ! तेरी चितौन अटपटी है। और वचन टेढे हैं इसलिए तेरे मन का भेद जानने में जब कामदेव भी हार गया तो फिर मनुष्य कैसे जान सकता है। १०९

११०

है हिय रहति हई छई, नई जुगति गति जोइ।
डीठिहि डीठि लगे दई, देह दूबरी होइ ॥

१११

दृग उरझत टूटत कुटम, जुरत चतुर सँग प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥

११२

बाजिद कहा अस्तुति करें, ऐसो चद न सूर।
आँखिन के पग फिसलई, देखि निरमलो नूर ॥

११३

लाल तिहारे सग मे, खेलें खेल बलाइ।
मूँदत मेरे नयन ही, करन कपूर लगाइ ॥

११४

असित सेत लोहित ललित, चोवा अबिर गुलाल।
पिचका-कुटिल-कटाच्छ सों, नैननि माच्यो ख्याल ॥

११५

अमिय हलाहल मद भरे, उज्जल स्याम सुरत्त।
केउ जीए केऊ मरे, केउ डोलत घूमत्त ॥

जगत् मे यह नई रीति देखकर हृदय में आश्चर्य और भय छाया रहता है कि जहां लगती तो दृष्टि है और दुबली, देह होती है। ११०

उलझती तो आँखें हैं और टूटते कुटुम्ब हैं, जुड़ते हैं चतुर लोगों के चित्त, और गाँठ पड़ती है दुर्जनों के हृदय मे। हे दई यह तेरी विलक्षण नीति है। १११

चन्द्रमा और सूर्य भी इस रूप के समान नही है। वाजिद साहब कहते हैं कि इसका क्या वर्णन करें ? इस निर्मल सौन्दर्य को देखने में तो आँखो के भी पैर फिसलते हैं। ११२

हे लाला, तुम्हारे सग यह आँख मिचौनी कौन खेला है जो खेले ? मेरे नयनो को, तुम हाथो मे कपूर लगाकर मूंदते हो (अर्थात् तुम्हारे स्पर्श से शीतलता, रोमाञ्च और सिहरन होने लगती है)। ११३

दोनों के नयनो ने होली का हुरदंग मचा दिया है। आँखो की श्यामता का चोवा श्वेतता की अबीर एव अरुणाई की मनोहर गुलाल है और कुटिल कटाक्ष की पिचकारियाँ चल रही हैं। ११४

अमृत, विष और मस्ती से भरे हुए श्वेत, कृष्ण, और लाल नयनो से जिनका पाला पड़ा, वे कुछ तो जी उठे कुछ मर मिटे, कुछ उन्मत्त होकर घूम रहे हैं। ११५

११६

अमिय, हलाहल, मै भरे, दूखल धवल सुरत्त।
पेऊ विरही मरि गये, जीये घूमत मत्त॥

११७

अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत भुकि भुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

११८

जब लग जुग बहु जतन करि ज्ञान, दीप अरु भौन।
तो लगि प्रथ लग्गत नहीं, तिय दृग अचल पौन॥

११९

दृग लौने मीठे अधर, कहत जान घट कौन।
मीठो भावै लौन पर, मीठे ऊपर लौन॥

१२०

नैन हमारे रसिक जन, रस ही रस पीवत।
तुरसी रस को खान है, रस देखे जीवत॥

१२१

यारक विधि हू पूछतो मिलतो, सिर तन नाँखि।
ते हूँ देखी है कहूँ, आँखिन ऐसी आँखि॥

तेरे नेत्र, अमृत विष, और मद्य से भरे श्वेत, काले व लाल हैं। इनके विरही कुछ तो मर गये और जो जीते हैं वे उन्मत्त हुए घूमते हैं। ११६

जिन्हें, अमृत, विष और मद्भरी हुई इन उज्ज्वल श्याम, और रतनारी आँखों ने एक बार देख लिया उनमें अमृत से प्रभावित तो जी जाते हैं, विष से प्रभावित मर जाते हैं और मद से प्रभावित झूम झूम के गिरते पड़ते हैं। ११७

कवि पृथ्वीराज कहते हैं कि संसार में यत्नपूर्वक सँजोये हुए ज्ञान दीप को तब तक ही सुरक्षित समझो जब तक कि नारी के नयन रूपी आंचल की हवा न लगे। ११८

आँखें तो सलोनी हैं और अधर मधुर हैं जान कवि कहते हैं कि इनमें कौन छोटा और कौन बड़ा ? क्योंकि सलोनी (चरकी) चीज के बाद मीठा रुचिकर होता है और मीठी चीज के बाद सलोनी। ११९

ये हमारे नयन अत्यन्त रसिक हैं, तुलसी कहते हैं कि ये रस ही का पान करते हैं रस को देखकर ही जीते हैं और स्वयं रस की खान हैं। १२०

यदि एक बार ही विधाता मिल जाये, तो चरणों में शीश नवांकर पूछता कि 'तने भी कहीं आँखों में ऐसी आँख देखी है ?' १२१

१२२

लीनें हूँ साहस सहसु, कीनें जतन हजारु।
लोइन लोइन-सिन्धु तन, पैरि न पावत पारु॥

१२३

छुटै न लाज न लालचौ, प्यौ लखि नैहर-गेह।
सटपटात लोचन खरे, भरे सँकोच सनेह॥

१२४

रुख रूखी मिस रोष मुख, कहत रुखौंहे बैन।
रूखे कैसे होत हैं, नेह चीकने नैन॥

१२५

आज कछू औरै भये, छए नए ठिक ठैन।
चित के हित के चुगल, ए, नितके होंहि न नैन॥

१२६

पल सो हैं पगि पीक रँग छल सोहैं सब बैन।
बल सोहैं कत कीजियत, ए अलसौंहे नैन॥

१२७

चलत ललित श्रम स्वेदकन-कलित, अरुन मुख तैं न।
बन बिहार थाकी तरुनि, खरे थकाए नैन॥

हजार साहस बटोर कर हजार यत्न करने पर भी लावण्य रूपी सागर को तैर कर ये नयन पार नहीं पारहे हैं। १२२

पीहर के घर में प्रिय को देखकर न तो लाज छूटती है और न प्रिय को देखने का लालच ही छूटता है, अत सकाव और स्नेह गेता से मरे नयन सटपटा रहे हैं (स्नेहवश देखने हैं लाजवश झुक जाते हैं)। १२३

कितना ही स्नेह रहित भाव का ढोंग किया, चिढ़े हुए मुँह मे रूखे वचन कहे फिर भी स्नेह स चीकने नयन रूखे नहीं हुए (उनसे प्रेम प्रकट हो ही गया)। १२४

हृदय के प्रेम के चुगलखोर ये नयन हमेशा जसे आज नहीं है। आज तो ये कुछ और ही ठाट बाट मे छाय हुए हैं (किसी से लड गये दीखते हैं)। १२५

पलकें पान की पीक के रंग म पगी हुई हैं, प्रत्येक वचन छल भरा शोभित हो रहा है अब इन आलस्य भरे नयनों को बलपूर्वक क्यों सामने ला रहे हो? १२६

वन विहार से थकी हुई युवती के द्वारा अच्छी तरह थकाए हुए (स्थिर हुए) नायक के नयन, सुन्दर तथा परिश्रम के पसीने की बूंदों से विभूषित नायिका के लाल मुख से हटते ही नहीं हैं। १२७

१२८

हँसि हँसाइ उर ल्याइ उठि, कहि न रुखौंहैं बैन ।
जकित थकित ह्वै तकि रहत, करत तिलौंछि नैन ।।

१२९

जदपि चवाइनु चीकनो, चालत चहुँ दिसि सन ।
तऊ न छांडत दुहुन के, हँसो रसीले नैन ।।

१३०

सहो रँगीले रति जगे, जगो पगी सुख चैन ।
अलसौहैं सौंहैं किये, कहैं हँसौहे नैन ।।

१३१

दूरचो खरे समीपको, लेत मान मन मोद ।
होत दुहुन के दृगनु हो, बत रस हास विनोद ।।

१३२

खिचे मान अपराध हूँ, चलिगे बढ़ैं अचैन ।
जुरति डीठि, तजि रिस खिसी, हँसे दुहुँनु के नैन ।।

१३३

कपट सतर भौंहैं करीं, मुख प्रनखौंहे बैन ।
सहज हँसौंहे जानिकरि, सौंहैं करति न नैन ।।

सुरमा छुडाने के लिए तत्सिक्त वस्त्र पोंछे हुए नयनों को वह नायक स्तब्ध होकर देख रहा है अत अब तू हँस, और उसे भी हँसा, अब रूखे वचन न कह, उठकर उसे गले लगाले। १२८

यद्यपि चुगलियों से भरी लोगों की सन चारों ओर चल रही हैं फिर भी दोनों के रसीले नयन परस्पर में हँसना नही छोडते। १२९

तू सुख चैन से पगी हुई किसी रगभरे रतिजगे में रात भर जागी है। इस सचाई को–तेरे आलम से उनींदे नयन जो सामने करने पर हँसते हुए से हैं–प्रकट करते हैं। १३०

उन दोनों के नेत्रो में ही बातों जैसा आनन्द और हास परिहास का खेल हो रहा है। अत वे दोनों दूर दूर खडे रहने पर भी सामीप्य का आनन्द मान लेते हैं।१३१

नायिका के नेत्र, मान से और नायक के नेत्र अपराध से खिचे हुए होने पर भी, परस्पर न देखने की बेचनी से एक दूसरे की ओर चले गये और दोनो ही के नयनों ने मिलते ही रोष और लज्जा को छोड हँस दिया। १३२

बनावटी कपट से क्रोधसूचक टेढी भौंह कर लिपटे हुए अनुचित वचन मुँह पर ला रही है, किन्तु अपने नयनों को स्वभावत ही हँसोड जानकर प्रिय के सामने नही करती है। १३३

१३४

गडी कुटुम की भीर मे, रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलकु परिजात इत, सलज हँसौंहीं डीठि॥

१३५

दृग दुति दमकनि में न कछु, लखी परी अनुहारि।
मो मनु हँसि हरि लै गई, गुल अनार सी नारि॥

१३६

नेक हँसौंहीं बानि तजि, लख्यौ परतु मुँहुँ नीठि।
चौका चमकनि चौंध में, परति चोध सी दीठि॥

१३७

चकी जकी सी ह्वै रही, बूझै बोलति नीठि।
कहूँ डीठि लागी लगी कै, काहू की डीठि॥

१३८

लोने मुँह दीठि न लगै यौं कहि दीनो ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियैं दिठौना दीठि॥

१३६

जे तब होत दिखा दिखी, भई अमी इक आंक।
दगै तिरीछी दीठि अब, ह्वै वीछी को डांक॥

परिवार की भीड म घिरी हुई है और मुझे पीठ देकर भी बैठ गई है फिर भी पल भर के लिए उसके मुस्कराहट और लाज भरे नयन इधर पड ही जाते हैं। १३४

नेत्रों की चमक में कुछ ठीक सी दिखाई तो नहीं पडी किन्तु कोई अनार के फूल जमी नायिका हँसकर मेरा मन हर ले गई। १३५

हे सखि! हँसते रहने की आदत को जरा छोड दे क्योंकि तेरे चौके की चमक से पदा होने वाली चौंध मे आँखें चौंधिया जाती हैं और तेरा मुँह देखने मे कठिनाई होती है। १३६

चकराई सी और स्तब्ध हुई नायिका पूछने पर भी (छेडने पर भी) बडी कठिनता से बोलती है मालूम होता है कही पर इसकी नजर लग गई है या किसी की नजर इसको लग गई है। १३७

हित चाहने वाली ने तो यह कहकर डिठौना लगाया था कि इस सलोने मुँह पर किसी की दृष्टि (नजर) न लगे, पर तु दिठौने से तो दृष्टियाँ दूनी होकर लगने लगीं। (दिठौने से सुन्दरता बढ गई अत दृष्टि हटती ही नही है। १३८

देखा देखी होते समय जो तिरछी नजर अमृत के सामान लगी थी वे ही अब विरह म बिच्छू के डक सी होकर जला रही हैं। १३९

१४०

नैना अदरि पैठि कै, मीत लखी चित लाइ।
डरती पलक न खोलहूँ, मति मुहिणी हुइ जाइ॥

१४१

मत चलाउ, मो सामुहैं, इनकौ पैनौ वार।
नजर-करारी-बाँकुरी, पल-म्यांनै करि, यार॥

१४२

सखी तुम्हारे दृगनि की, सुधा मधुर मुसक्यानि।
बसी रहत निस द्योस हू, अब उनकी अँखियानि॥

१४३

जब तें मो ऊपर पडी, स्याम सलोनी जोति।
लोनी लागे भींत ज्यो, देह दूबरी होति॥

१४४

दिन दिन दुगुन बढै न क्यो, लगनि अगनि की झार।
उनै-उनै दृग दुहुँनि के, बरसत नेह अपार॥

१४५

तलफत धाइनि जीव कों, कौन जियावत आनि।
जो न होति उन दृगनि मे, सुधा मधुर मुसक्यानि॥

प्रिय को नयनो मे लाकर, आख मूँदकर चित्त लगाकर देख रही हूँ और डरती हुई पलकों को इसलिए नही खोलती कि कही सपना न हो जाय। १४०

कृपया इन बाँकी और करारी नजरो का पना वार मुझ पर मत करो। हे मित्र, इस नेत्रो की तलवार को पलको की म्यान मे (बन्द) करलो। १४१

हे सखि! तुम्हारे नयनो की अमृत मधुर मुस्कराहट अब उनकी आंखो में दिन रात बसी रहती है। १४२

जिस दिन से मेरे ऊपर श्याम की सलोनी दृष्टि पडी है उसी दिन से लोनी लगी (कालर खाई) भीत की तरह मेरी देह दुबली होती जा रही है। १४३

लगन रूपी अग्नि की लपट दिन दिन दुगनी होकर क्यों न बढे जबकि उन दोनों के उमगे हुए नयनों से अपार स्नेह बरसता है। १४४

घावो से तडफते हुए को कौन आकर जिलाता, यदि उन नयनो मे अमृत के समान मधुर मुस्कराहट न होती (उसी से घायल हुए और उसी को याद कर जीते हैं)। १४५

१४६

कौन बसति है कौन में, यों कछु कहो परै न।
पिय नैननि तिय नैन हैं, तिय नैननि पिय नैन॥

०

कौन किसमे रहता है ? यह कहा नही जा सकता क्या पता प्रिय के नयनो मे तिय नयन रहते हैं या तिय नयनो म प्रिय नयन ? १४६

अवश नयन

१४७

वे चितवन मोचित परे, तबतें चित्त न आन।
लोचन मे लोचन गडे, लोचन मोचन-प्रान॥

१४८

नैना नेक न मानहीं कितो कह्यौ समुझाइ।
तनु मनु हारे हू हँसे तिनसों कहा बसाइ॥

१४९

एक दिना देखे सखी, हुते बजावत बीन।
मेरे नैना मोहि लै, भये, जाय आधीन॥

१५०

मन राख्यो बौरायके ज्यों राख्यो समुझाइ॥
नैना बरजे ना रहैं मिलें अगाऊ जाइ॥

जब से उन तिरछी चितवनों को मैंने देखा है तब से चित्त वश में नहीं है क्योंकि प्राणों को हरने वाले वे नयन मेरे नयनों में चुभ गए हैं।१४७

मैंने कितना समझाकर कहा पर ये नयन जरा भी नहीं मानते। जो तन मन हारने पर भी हंसते रहें उन पर किसी का क्या जोर चले। १४८

हे सखि! एक दिन बीन बजाते हुए कृष्ण को मैंने देखा था बस, उसी दिन से मेरे नयन मुझे लेकर उसके आधीन हो गये। १४९

समझा बुझाकर रोते हुए की तरह मन को तो बहलाकर वश में कर लिया किंतु ये नयन किसी भी तरह मना करने पर भी नहीं मानते और सबसे आगे जाकर मिलते हैं। १५०

१५१

नैन मिले जे ना रहैं ना, अपजसहि डराय।
प्रीतम आवत देखिकै, मिलन अगाऊ जाय॥

१५२

नैना बरजे ना रहैं जित बरजौं तित जाय।
जा सौं मेरे रूसनो, ताही सौं मिल जाय॥

१५३

प्रीत सबै कोऊ करत, इनि हों आनी बाज।
मो प ए आवै नहो, अँखियां आशिक बाज॥

१५४

मेरे बरजे ना रहै, गये पेम रस लैन।
अपबस तैं परवश भये, ए बिसवासी नैन॥

१५५

साजे मोहन मोहको मो हीं करत कुचैन।
कहा करूँ उलटे परे, टौने लौने नैन॥

१५६

लोक-लाज-डर जाय को मेटैं सब गुन गाथ।
विवस भई डोलौं सखी, इन ननिनि के साथ॥

एक बार मिले हुए नयन रोकने से नहीं रुकते हैं और न बदनामी से डरते हैं व तो प्रिय को आता हुआ देखते ही मिलने के लिए पहिले से आगे बढ जाते हैं। १५१

इन आखों को जहां के लिए मना किया जाता है वहीं ये जाती हैं और रोकने पर भी नहीं रुकती हैं। जिससे मुझे मान करना (रूठना) है उसी से मिल जाती है। १५२

प्यार तो प्राय सब ही करते हैं पर इन आखों से मैं बाज आई। ये आशिक से खेलने वाली मेरे वश में ही नहीं आ रही हैं। १५३

मेरे द्वारा मना करने पर भी ये मेरे विश्वस्त नयन नहीं माने और प्रेम रस लेने चले गये, और अब अपने वश में न रहकर पराये वश हो गये। १५४

मोहन को मोहित करने के लिए सिद्ध किये गये नयन रूपी टौने मुझे ही दुखी करने लगे। मैं क्या करूँ? ये सलौने नयन टौने तो उलटे आ पड़े। १५५

हे सखि! लोक लाज से अब कौन डरे? मैं तो सारे गुण अवगुण की चर्चा को मिटाती हुई मजबूर होकर इन नयनों के साथ डोलती फिरती हूँ। १५६

१५७
और कछू सूझै नहीं, दई दुहाई मैन।
वाही के सँग ह्वै गये नैननि लागे नैन॥

१५८
रहे निगोडे नैन डिगि, गहै न चेतु अचेतु।
हौं कसु करि रिसकै करौं ए निसखे हँसि देत॥

१५९
कँवा आवत ईहि गली, रहौ चलाइ चलौं न।
दरसन की साधै रहै, सूधे रहैं न नैन॥

कामदेव की दुहाई के कारण नयनों से लगे हुए नयन उसी नायक के साथ हो गए हैं। उसके सिवाय उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता।१५७

ये निगोड़े नयन छिप ही जाते हैं। और नासमझ समझने भी तो नहीं, मैं दृढ़ होकर मान (रोष) करती हूँ पर ये हँस देते हैं।१५८

कई बार इस गली में आने पर उसे देखने के लिए इन नयनों को चलाकर हार जाती हूँ पर ये (लाजवश) साथ नहीं रहते अतः दर्शन की साध बनी ही रह जाती है।१५९



गडे नयन

१६०

में जबके दरसे पिया, गसे नैन तिस काल।
रहे फसे निकसे नहीं, बसे न फिरके भाल॥

१६१

घूंघट पट की ओट मे, खबर परी कछु नाहि।
लोचन लालन मे रहे, लालन लोचन माहि॥

१६२

रमतां अटके नैन दुइ, नेक न मटके जांहि।
उह छबि नैनन मे गडो, नैन गडे छबि माहि॥

१६३

कुच गिरि चढि अति थकि तहूं, चली डीठि मुंह-चाड।
फिरि न टरी परियै रहा, गिरी चिबुक की गाड॥

मैंने जब प्रिय को देखा था तभी नयन वहा चुभ गये थे और तभी से फँस रहे हैं निकलते नही हैं। अभी तक लौटकर मेरे ललाट मे नही बसे। १६०

मेरी आखों म तो न दलाल समा गये और नन्दलाल में मेरी आँखें समा गई किन्तु घूँघट की ओट म किसी को भी कोई पता नही लगा। १६१

खेल ही खेल म ये नयन ऐसे अटके हैं कि जरा भी इधर उधर नही किये जाते क्योंकि, वह छवि तो आँखों म गट गई और आँखें उस छवि में गड गई हैं। १६२

स्तन रूपी पहाडों पर चढ़ने मे अत्यत थकी हुई दृष्टि प्रबल इच्छा से मुँह की ओर चली परन्तु चिबुक के गड्ढे म तेजी गिरी कि फिर वहा से न उठ सकी। वहीं पडी रही। १६३

१६४

डारे ठोडी गाड गहि, नैन-बटोही मारि।
चिलक चौंध मे रूप ठग, हांसी फांसी डारि॥

१६५

नैना अटके नेह सों गडे रूप मे जाय।
चहलें परि निकसैं नहीं, मनो दूबरी गाय॥

●

सौंदर्य रूपी ठग ने चिलक रूपी चकाचौंध मे मेरे नयन रूपी पथिक को हँसी रूपी फाँसी डाल, मारकर ठोडी के गड्ढे म डाल दिया है। १६४

नेह से अटके हुए नयन, रूप मे गड गये और अब निकल नहीं सकते। जसे दुबली गाय कीचड म पडकर नहीं निकल सकती। १६५



अनुरक्त नयन

१६६

नैना पंकज अरुण अति, जगे पगे अनुराग।
मानो पुतरी स्याम मधि, मधुकर लेत पराग॥

१६७

अरुण बरन डोरे बने, भीजे पेम मँजीठ।
देखे लोयन लाल के, रंगी जात है डीठ॥

१६८

बाल, कहा लाली भई, लोइन कोइन माँह?
लाल, तुम्हारे दृगनि की, परी दृगन क छाँह॥

१६९

छिरके नाह नवोढ-दृग कर-पिचकी जल जोर।
रोचन रंग लाली भई, बिय तिय-लोचन कोर॥

प्रेम से पगे हुए ये लाल नेत्र कमल के समान हैं और बीच की काली पुतली मानों पराग चूमने वाला भ्रमर है। १६६

प्रेम-मजीठ से भीगे हुए नेत्रों में लाल लाल डोरे बन गये हैं। उन्हें देखकर मेरी दृष्टि भी रंगी जा रही है (अनुराग पैदा हो रहा है)। १६७

अरी बाला! तेरे इन नयनों के कोयों में लालिमा कहाँ से आई? ऐसा पूछने पर बाला ने उत्तर दिया कि—हे लाल! तुम्हारी ही आँखों की परछाँही इनमें पड़ रही है। १६८

फाग क्रीडा में नायक ने तो नई दुलहिन के नयनों को हाथ की पिचकी द्वारा छिड़के थे किन्तु डाह के कारण सौतिन की आँखें रोचन के समान लाल हो गईं। १६९

१७०

कत लपटइयतु मो गरें, सो न जु ही निसि सैन।
जिहिं चपक बरनी किये, गुल्लाला-रँग नैन ।।

१७१

पिय-मुख-पकज मे परे, तिय-दृग मधुप उडाइ।
अरुण भये रस पान बस, राग पराग लगाइ ।।

१७२

मोहिं कहत कत बाउरी करं दुराउ दुरै न।
कहे देत रँग राति के, रँग निचुरत से नैन ।।

१७३

तरुण कोक नद-बरन वर, भए अरुन निसि जागि।
वाही के अनुराग दग, रहे मनो अनुरागि ।।

१७४

बात बनाये ना बनें, पूछे पिय अँगराग।
कहे देत है प्रगट ह्वै, भरे नैन अनुराग ।।

जिस चंपक वल्ली ने आपके नयन गुल्लाला पुष्प जैसे लाल कर दिये हैं और रात में जो आपकी शय्या पर थी वह मैं नहीं हूँ मुझे व्यर्थ ही क्यों गले लगा रहे हो ? १७०

नायिका के नयन रूपी भ्रमर उड़कर प्रिय के मुख-कमल में जा बैठे। और अनुराग के पराग का रस पीकर लाल हो गये। १७१

व्यर्थ ही मुझे पागल या मानी क्यों कहते हो ? ये बातें छिपाने से नहीं छिपतीं। रात के रंगों को ये रंग निचुड़ती आँखें स्पष्ट कह देती हैं। १७२

रात भर जागने से तुम्हारे नयन खिले हुए कमल के सुन्दर रंग जैसे लाल हो गये हैं मानो उसके अनुराग से ये अनुरंजित हैं। १७३

अंगराग के विषय में प्रिय द्वारा पूछने पर कोई भी बहाना नहीं बनता, क्योंकि अनुराग से भरे ये नयन प्रकट रूप से सब कुछ कह देते हैं। १७४

●

मानिनी आँखें

१७५

नैन स्रवन मिलि मत्र किय, नवल रोस रस सधि ।
लै मन माननि आपनों, पियहि समप्यो बधि ।।

१७६

मेरो जिय तरसत रहै, तो मन बसो अनेक ।
नैनन देखत यह भई, भयो करेजा छेक ।।

१७७

तुम सों कीजै मान क्यो, बहु नायक मन रंज ।
बात कहत यों बाल के, भरि आये दृग-कंज ।।

१७८

कत सकुचत, निधरक फिरो, रतियो खोर तुम्हैं न ।
कहा करो जो जाइ ए, लगैं लगौंहे नैन ।।

मानिनी नववधू ने नयन और कानों की मंत्रणा द्वारा रोष और प्रेम में सुलह करवा अपने मन को बाँधकर प्रिय को समर्पित कर दिया। १७५

मेरा जीव तो तेरे लिए तरसता है और तेरे मन में अन्य अनेकों बस रही हैं यह सब इन आँखों के देखते देखते हुआ है इसलिए कलेजा छलनी हो गया है। १७६

"हे मन का प्रसन्न करने वाले नायक! मैं तुमसे कैसे मान करूँ?" इस तरह कहते कहते ही प्रिया के नयन भर आये। १७७

संकोच क्यों कर रहे हो? निधड़क होकर क्यों नहीं सर्वत्र भटकते? इसमें तुम्हारा रत्ती भर भी दोष नहीं है। ये लगने की आदत वाले नयन कहीं न कहीं लगते ही रहते हैं। १७८

१७९

कितो कियो पाइन परी, तब तो बोली नाँहि।
अब तो पिय सों हँसि मिलो, तिरछी चितवन माँहि ॥

१८०

नहि नचाइ चितवति दृगनि नहि बोलति मुसक्याइ।
ज्यों ज्यो रूखी रुख करति, त्यों त्यो चितु चिकनाइ ॥

१८१

हम हारीं कै कै हहा, पाइनु पारयो प्यौरु।
लेहु कहा अजहू किए, तेह तरेरयो त्यौरु ॥

१८२

नेह रूँख बोयो दृगनि, बैन सुध-रस पाय।
ग्रीषम से निस्वास तें, काहे देत जराय ॥

१८३

पिय लीनो जिय लालची, सखी सिखावत मान।
देखत हीं अँखियाँ लगीं, कैसे रहत सयान ॥

१८४

मान गुमान सब तज्यो, करै कौन विधि टेक।
नैनन सों नैना मिले, पिय जिय भये जु एक ॥

मैंने कितने उपाय किए, पाँवों में भी पड़ी, तब तक तो प्रिय से बोली तक नहीं। और अब एक ही तिरछी चितवन से हँस हँस कर गले लग रही है। १७६

। न तो नयनों को नचाकर देखती ही है और न मुस्कुराकर बोलती ही है, फिर भी तू ज्यों ज्यों अपनी रूखाई करती है त्यों त्यों मेरे चित्त में चिकनाई हो रही है (हृदय स्नेहसिक्त हो रहा है)। १८०

अरी मानिनी ! हम, हा हा करते करते थक गईं और प्रिय को भी तेरे पाँवों में ला पटका, इतने पर भी रोष से तेवर चढ़ाकर क्या लेना चाहती हो ? १८१

अपनी ही आँखों से बोए हुए और अपने ही अमृत सम वचनों से सींचे हुए स्नेह के वृक्ष को, ग्रीष्म के समान गरम गरम निश्वासों से क्यों जला रही हो ? १८२

प्रिय की सलौनी सूरत के लिए मेरा जीव अत्यंत लोभी है इस पर भी हे सखि ! तू मान करना सिखाती है किन्तु प्रिय को देखते ही मेरी आँखें तो उससे लग गईं, अब कोई सयानी कैसे रह सकती है। १८३

मानिनी के नयन ज्योंही प्रिय के नयनों से मिले त्योंही मानिनी और प्रिय दोनों एक मेक हो गए। अब वह किससे और कब हठ करे ? अतः उसने रूठना और घमण्ड करना सब छोड़ दिया। १८४

१८५

चलौ, चलैं छुटि जाइगौ, हठु रावरैं सँकोच।
खरे चढाए हे, ति अब, आये लोचन लोच॥

१८६

नकरु न डरु, सब जग कहतु, कत बिनु काज लजात।
सौंहैं कीजै नैन जो, साँची सौंहैं खात॥



आप चलिए, आपके चलन पर आपके संकोच से उसका हठ (मान) छूट जायगा। क्योंकि जो तरेरे, चढ़ाये हुए नेत्र थे व अब कुछ नर्मी पर आये हुए हैं (पहले वाला रोष अब नहीं रहा है ऐसा उसकी आखों से लगता है)। १८५

सब ससार कहता है कि—'न मर और न टर' फिर अकारण क्यो शर्मिन्दे हो रहे हो ? यदि निरपराधी हो और सच्ची सौगन्ध खा रहे हो तो जरा नयन सामने तो कीजिए। १८६

अनीदे नयन

१८७

लाल तिहारे रूप की कहो रीति यह कौन।
या सों लागत पलक दृग, लागत पलक पलौन॥

१८८

रूप सरूप जु पुरि रहे, पलक लगत नहिं चैन।
अहनव नींद हि ना पर, ननन रूँधे नैन॥

१८९

आठ पहर साठौं घरी जे सोव ते और।
नैनन मे मोहन बसे, नहीं नींद को ठौर॥

१९०

नींद देखि जल पूरि दृग, उलटि अपूठी जाति।
यातें आवत ना इतें, बूडन तें जु डराति॥

तुम्हारे रूप सी दय की यह कौन सी रीति है कि इस रूप से जिस किसी के नयन एक क्षण को लग जाते हैं फिर उसके पलक एक पल को भी नहीं लगते। १८७

सुन्दर रूप से नयन भरे हुए हैं अत पलक लगाने से चैन नहीं पड़ता। अहमद कहते हैं किसी के नयनों द्वारा जब ये नयन बँधे हुए होते हैं तो इनमें नींद भी नहीं आती है। १८८

जो सोते हैं वे कोई और ही होंगे, यहाँ तो आठों ही पहर इन नयनों में मोहन निवास करते हैं अत नींद को रहने के लिए जगह ही नहीं है। १८९

विरहन के जल से भरे नयनों को देखकर निद्रा पीठ दिखा कर लौट जाती है वह आँसुओं में डूबने के डर से यहाँ नहीं आती है। १९०

१६१

अँसुवनि के परवाह मे, अति बूडिबे डराति ।
कहा कर नैनानि को, नींद नहीं नियराति ।।

१६२

लाल पिया के बिछुरतें, बिछुर गये सब चैन ।
भूख प्यास नींदो गई, उर्द्ध बाहु भये नैन ।।

१६३

पल न लगत है एक पल, छिन न घटत घट सांस ।
साह समन जब तें चुभो, नैन सैन की फांस ।।

१६४

जब पल आवै झुकति पिय, दरपन देति दिखाइ ।
तब अपनी अँखियान पै, अँखियां रहति लुभाइ ।।

१६५

नींद भरी पल निरखि पिय, देति सु पान बनाइ ।
उत नैनन के खुलत ही, इत बीरो गिर जाइ ।।

१६६

लखि अरुझे सुरझें नहीं, सब निसि गई बिहाइ ।
आरस उरझे द्रगन मे, पीय रहे अरुझाइ ।।

क्या करें ? इन नयनों के पास नींद नहीं आ रही है क्योंकि वह आँसुओं के प्रवाह में डूबने से डरती है। १६१

प्रिय के बिछुड़ते ही सारे सुख भी बिछुड़ गये। भूख, प्यास और नींद भी चली गई। ए नेत्र ऊँचे हाथ किए रहते हैं अर्थात् आँखें फटी की फटी रहती हैं, पलक नहीं लगती। १६२

सजन कहते हैं कि जब से नैनों के इशारे की फाँस चुभी है तभी से एक पल भी पलक नहीं लगता है। और क्षण भर को भी उसासें नहीं घटती हैं। १६३

जब भी नींद के लिए पलक झुकने को होते हैं त्यों ही प्रिय नायिका को दरपन दिखा देते हैं। तभी नायिका के झपने ही नैन अपनी ही (प्रतिबिम्बित) आँखों पर लुभा जाते हैं (और नींद उचट जाती है)। १६४

जब भी पलकों में नींद आती हुई प्रिय देखते हैं तभी पान की बीरी बनाकर प्रिया के मुख में देना चाहते हैं, पर उधर ज्यों ही नैन खुलते हैं त्यों ही इधर प्रिय के हाथ से बीरी गिर जाती है। १६५

सारी रात बीत गई पर सौन्दर्य देखकर उलझे हुए नयन सुलझे नहीं। और अब जिन नयनों में आलस उलझ रहा है उन्हीं नयनों में प्रिय उलझ रहे हैं। १६६

१९७

सखी लखें दुरि द्रुमन तें, ह्वै रहे चित्र सरीर।
निसि उनदींहे दृगन पै, भई दृगन की भीर॥

परस्पर देखत हुए जिनके शरीर चित्रवत् हो रहे हैं उन्हें वृक्षों की ओट से सखियाँ देख रहा हैं—रात के अनोखे नयनों पर (सखियों के) नयनों की भीड़ लग गई है। १९७

छविछाके नयन

१९८

रूप बैस मदिरा मदन, मदन मद रिसे नैन ।
प्रेमछके पिय छविछके, हटके नेकु रहै न ॥

१९९

बहके सब जियकी कहत, ठौर कुठौर लखै न ।
छिन औरै छिन और से, ए छवि छाके नैन ॥

२००

तकि री मुख की ओर दृग, रहे चोप चित चाइ ।
छक री रहे निदान अब, प्रीति पियाले पाइ ॥

२०१

रूप देखि ललचात अति, ठौर कुठौर गन न ।
छिन औरै छिन और से, ये छवि छाके नैन ॥

रूप यौवन और माधुरी के मदों में एवं काम के प्रभाव से मस्त हुए नयन प्रिय की शोभा की छाक से छक रहे हैं इसलिए हटकने पर जरा भी नहीं रहते । १९८

मद मत्त, बहका हुआ व्यक्ति जगह बेजगह नहीं देखता हुआ अपने हृदय की सब बातें कह बैठता है उसी प्रकार रूप माधुरी से छके हुए नयन, क्षण में कुछ और क्षण में कुछ भाव प्रकट कर रहे हैं । १९९

उमंग से जी भरकर उसके मुख की ओर ये दृग देखते रहे और मन में प्रेम के प्याले पीकर मद मस्त हो गये । २००

सुंदर रूप देखकर अत्यंत ललचाये हुए देग, काल को न गिननेवाले, छवि में छके ये नयन प्रतिक्षण और ही तरह के होते जा रहे हैं । २०१

२०२

थकित भये पिय देखिकै, देत न आवै सैन।
छवि छाकें लै छकि रहे, भये रूप वस नैन ॥



प्रिय को (बहुत देर एकटक, देखकर नयन थक गये हैं अब इनमे सैन भी नहीं की जा सकती है। ये शोभा रूपी छाक से अघाये हुए, रूप के वश में हो रहे हैं। २०२



विशाल नयन

२०३

बडे आपने दृगन कौं, तुम कहि सको सु मैं न ।
पिय नैनन भीतर सदा, बसत तिहारे नैन ।

२०४

मेरे नैननि सो कहे, बडे बडे सब लोइ।
देखे तें पिय बसि परं, अनदेखे दै रोइ ॥

२०५

यूं रहीम सुख होतु हैं, बढे आपनो गोत ।
ज्यो बडरी अँखियानि लखि, आँखिन ही सुख होत ॥

२०६

बहुधा बैरी गोत के, सहो गोतियन जानि ।
बडे नैन खटकन लगे, नैन हियन में आनि ॥

अपने नयनों को तुम भले ही विशाल बतलाओ मैं तो नही बतलाती क्योंकि ये तुम्हारे नयन तो प्रिय के नयनों में सदा बसते हैं (इसलिए प्रिय के नयनों से तो छोटे ही हैं)। २०३

मेरी आँखों को सब लोग बड़ी बतलाते हैं पर ये तो ऐसी हैं कि प्रिय को देखने पर तो उसके वश में हो जाती हैं और बिना देखे रोने लगती हैं (यह क्या बड़प्पन ?)। २०४

रहीम कहते हैं कि अपने वंश की वृद्धि को देखकर जैसे सुख अनुभव होता है उसी प्रकार बड़ी आँखों को देखकर देखने वाली आँखों को सुख होता है। २०५

प्राय अपने गोत्र के लोग ही शत्रु होते हैं यह बात सही है, ये बड़े नेत्र अन्य नेत्रों के हृदय में खटकने लगे हैं। २०६

व्यथित नयन

२०७

हियो जरायो बाल को, अनल ओज निज मैन।
ता पर तेरे देत दुख, लाल सलौने नैन॥

२०८

पग परसन कों कर तपैं, स्रवन सुनन कूँ बैन।
हृदौ तपै तुव मिलन कूँ, मुख देखन कूँ नैन॥

२०९

जो निरखौं तो स्याम कौं, कै पल रहौं लगाय।
इन नैनन को नेम यह, और न कछू सुहाय॥

२१०

नैन उदासी चितरहे, बिन देखे नहिं चैन।
प्रीतम प्यारे जब मिलैं, तब सुख पावैं नैन॥

एक ओर तो कामदेव ने अपनी आग की तावना से (उस) बाला का हृदय जला ही रक्खा है और उस पर हे लाल ! तेरे ये 'सलोने' नयन दुःख दे रहे हैं (जले पर नमक) । २०७

हाथ, चरण स्पर्श के लिए कान मीठे वचन सुनने के लिए सतत हैं परन्तु नयन तो केवल दर्शन के लिये ही सतत हैं । २०८

इन नयनों ने यह नियम लिया है कि अगर देखूँ तो केवल कृष्ण को ही देखूँ, अन्यथा पलक मूँद कर ही रहना अच्छा, क्योंकि श्याम के अतिरिक्त इन्हें कुछ नहीं सुहाता है । २०९

ये उदास नयन बाट देखते रहते हैं क्योंकि इन्हें प्रिय को देखे बिना सुख नहीं । अतः जब प्रियतम मिलेंगे तभी इन्हें सुख होगा । २१०

२१७

ग्रौर हँसनि ग्रौर लसनि, ग्रौर कसन कटि ठौर।
नैन चुगल कानन लगे मन करि डारचौ ग्रौर॥

२१८

चिन्ता-चमक उदास मन, नींद गई तन-छीन।
मदन सदन भावै नहीं, इन ननिन इह कौन॥

२१९

पेम पगे रस के सगे, मद रँग मगे विसाल।
नैन लगे तुव नागरी, ठौर ठगे नन्दलाल॥

२२०

ज्यों मन मेरो गति करै, त्यो जो करै सरीर।
तो हू दरसन पाइकर, दूर करौं चख-पीर॥

२२१

इन दुखिया ग्रँखियाँनु कौं, सुखु सिरज्योई नाँहि।
देखें बनै न देखतै, ग्रनदेखें ग्रकुलाँहि॥

२२२

तन मन तलफत रहत हैं, कहे जात नहिं चैन।
बिन देखे महबूब के, भये जहमती नैन॥

जब से चुगलखोर नयन कानों से लगे हैं तभी से हँसना शरीर की शोभा और गठन, एवं कटि प्रदेश और ही तरह का हो गया है और तो और मन को भी और ही प्रकार का कर दिया है। २१७

इन नयनों ने यह कर दिखाया—कि चिंता की चमक से मन उदास रहता है, नींद नहीं आती शरीर कृश हो गया और घर नहीं सुहाता है। २१८

प्रेम मे पाग हुए नया रस के निकट मम्बन्धो व मस्ती की रंगत में माने इन तरह विशाल नयनों द्वारा नदलाल का ठगा जाना उचित ही है। २१९

जिस प्रकार मेरा मन शीघ्रगामी है उसी प्रकार यदि शरीर की चाल भी तेज हो जाय तो इसी क्षण तुम्हारे दर्शन पाकर इन नयनो की वेदना दूर करलूँ। २२०

इन दुखियारी आँखों के लिए सुख तो जैसे (विधि ने) बनाया ही नहीं है क्योंकि प्रिय को देखने पर तो ये आनन्द देखने नहीं देतीं और न देखने पर ये व्याकुल हो उठती हैं। २२१

शरीर और मन की तड़पन मुँह से तो नहीं कही जा रही है पर प्रिय को देखे बिना ये आँखें दुखी हो गई हैं। २२२

२२३

जमला तरफत दिन गयौ, आइ रैन जिय लैन।
बिनु देखे महबूब के, भये जहमती मैन ॥

२२४

निसि-दिन इक टक राखियै, निमिष न इत-उत जात।
नैननि नैन लगे रहैं तोउ न नैन सिरात ॥

२२५

जिन नैननि रस ढरनि सो, चित्त चौगुनो चैन।
चहूँ कोद भटकत फिरैं, कहा भये वे नैन ॥

२२६

पल पल प्रीति बढाइकै, अब लागे दुख दैन।
जिन नैना तुम देखते, कहा भये वे नैन ॥

२२७

मूरत हो मूरत लखत, तनक तनक नहिं चैन।
चोरत गुरु-जन चलत चित, दूखन आये नैन ॥

२२८

मैं हों जान्यो लोइननु, जुरत बाढि है जोति।
को हों जानतु डोठि को, दोठि किर किटो होति ॥

जमला कहता है कि दिन तो तड़पते हुए बीत गया पर अब रात इस जीव को लेने आ पहुँची प्रिय को देखे बिना नेत्र बहुत दुखी हो रहे हैं। २२

एक क्षण भी इधर उधर न जाय बिना रात दिन एकटक रखकर नयनों से नयन लगाए रहने पर भी ये नयन शीतल नहीं होते (तृप्त नहीं होते)। २२४

जिन रग बरसाते वाले नयनों में चित्त में कौतुक चैन होता था आजकल वही चारों ओर भटकते रहते हैं और वश में वश हो गए हैं। २२५

पहले तो प्राण प्राण में प्रेम को बसाया और अब दुख देने लगे, जिन नेत्रों से तुम पहले देखा करते थे अब उन्हें क्या हो गया? २२६

ठहर ठहर कर थोड़ा थोड़ा गुरुजनों से बचा बचाकर प्रिय की मूरत देखते देखते नयन दुखने आ गए, फिर भी चैन नहीं है। २२७

मैंने तो जाना था कि इन नयनों के मिलने से ज्योति बढ़ेगी पर मैं यह। जानती थी कि आँख में पड़ी हुई आँख, किरकिरी सी हो जायगी। २२८

आँसू भरे नयन

२२९

हौं न कहत तुम जानिहौ, लाल बाल की बात।
अँसुवाँ उडुगन परत हैं, होन चहत उतपात ॥

२३०

बिछुरत रोवत दुहुँन कौ, सखि यह रूप लखै न।
दुख अँसुवाँ पिय-नैन है, सुख-अँसुवाँ तिय नैन ॥

२३१

आनँद आँसुन सो रहे, लोचन पूरि रसाल।
दीनी मानहुँ लाज कौं, जल-अञ्जुलि वर-बाल ॥

२३२

पानिप पूर पयोधिमे, नेक नहीं ठहराइ।
नैन मीन ए, पलक में, मन जहाज डिगि जाइ ॥

हे लाल ! मैं कुछ नहीं कहती, आप स्वयं उस बाला के हृदय की बात जानते हो। आप तो प्रस्थान कर रहे हो और बाला के आंसू रूपी तार टूटकर गिर रहे हैं, कोई उत्पात होने वाला है। २२९

बिछुड़न के समय दोनों की आंखों में आंसू आ रहे हैं इस रूप को हे सखि जरा देख तो सही, प्रिय के नयनों में बिछुड़ने के दुख के आंसू आ रहे हैं (बस इसी कारण) तिया के नयनों में सुख के आंसू छलक आये। २३०

रसीले नयन आनन्दाश्रुओं से भर गये मानो सुन्दरी बाला ने लज्जा को जलाञ्जलि दे दी हो (लज्जा को त्याग दिया और सबके सामने रो पड़ी)। २३१

(अश्रु) समुद्र के जल प्रवाह में ये नयन मीन जरा भी ठहरते नहीं हैं अत एक क्षण ही में मन का जहाज डिग जाता है। २३२

२३३

पानिप पूर पयोधि मे, रूप जाल बगराइ।
नैन मीन ए नागरिन, वर वट बाँधत आइ॥

२३४

अजन जुत अँसुवानि की धार धसति जुग नैन।
मनो डोर मखतूल के, बाँधे खजन नैन॥

२३५

मेरे दृग-वारिद वृथा, बरसत वारि प्रवाह।
उठत न अकुर नेह को, तो उर अतर माँह॥

२३६

नए विरह-अँसुवानि को, छिन छिन होत उदोत।
अँखियनि लख्यो अपार वह, तन पानिप को सोत॥

२३७

बिन देखे दुख के चलें, देखे सुख के जाँहि।
कहौ लाल इन दृगन तें, अँसुवाँ क्यो ठहराँहि?

२३८

अहमद पच्यौ न पेम रस, नैन बिलग्गो हूक।
ज्यों मतवारो मद पिवै, छरदि करत अरबूक॥

पानी के प्रवाहवाले सागर में अर्थात् आँसुओं के प्रवाहवाले सागर में रूप का जाल फैलाकर ये नयन रूपी मछलियाँ नागरिकों को जबरन फँसा कर बाँध लेती हैं। २३३

अंजन का रंग लिए हुए आँसुओं की धारा दोनों नयनों में ऐसी लगती है मानो मसतूल के डोरों से नयन रूपी खंजन बाँधे हुए हों। २३४

मेरे नयन रूपी बादल व्यर्थ ही अश्रु जल का प्रवाह बरसा रहे हैं जबकि तेरे हृदय में नेह का अंकुर फूटता ही नहीं। २३५

नये नये विरह में क्षण क्षण में आँसू आ रहे हैं। मानों आँखों में कोई अपार पानी का स्रोत लग गया हो। २३६

हे लाल अब तुम्हीं बताओ, इन आँखों के आँसू कैसे ठहरें जब कि बिना देखे तो दुख के और देखने पर सुख के आँसू आते हैं। २३७

जैसे कोई शराबी अधिक शराब पीकर वमन करता है। इसी प्रकार अहमद कहते हैं इन आँखों को भी कोई बदहज़मी लग गई है। इस प्रेम का रस पचा नहीं है वही आँसू होकर बह रहा है। २३८

२३९

नयन हमारे रहँट-घरि, घरो न धीर धराँहि।
बिना पियारे श्रापने, भरि श्रावँ ढुरि जाँहि ॥

२४०

पिय-वियोग तिय दृग–जलधि, जल तरग श्रधिकाय।
बरुनि मूल वेला परसि, बहुरचौ जाय बिलाय ॥

२४१

स्रवन सुनत हिय गहबरो, गवन करत है श्राज।
नैन कलस द्व भरि लिए, पियहिं बँदावन काज ॥

२४२

लटपटात लटकत चलैं, श्रटपट बोलत बैन।
कछु खट पट पिय सों भई, टप टप टपकत नैन ॥

२४३

नेहु न नैननु को कछू, उपजो बडी बलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ ॥

२४४

स्रवन रहत है सुजस सुनि, रसन रहत जपि सुक्ख।
श्ररबराय फूटहिं नयन, देखन को पिय मुक्ख ॥

ये रहँट-घटी रूपी नयन एक घड़ी भी धैर्य नहीं रखते। प्रिय के विरह में भर भर कर आते हैं और ढुल ढुल कर जाते हैं। २३९

प्रिय के विरह से मुग्धा की आँखों में बहुत सी जल तरंगों (आँसुओं) का बढ़ा हुआ समुद्र बरौनी रूपी किनारों को छू छू कर लौट कर विलीन हो रहा है। २४०

प्रिय आज जा रहे हैं ऐसा कानों से सुनते ही हृदय घबड़ा उठा और आँखें आँसुओं से भर आईं मानो प्रिय को शुभ शकुन देने के लिए नयन रूपी दो कलश भर लिए गये हों। २४१

अंगों को लटकाए हुए लटपटाती हुई सी चलती है और वचन भी अटपटे ही बोलती है। अतः मालूम होता है, कुछ प्रिय से खटपट हो गई है तभी आँखें टप टप आँसू टपका रही हैं। २४२

यह प्रेम नहीं है, मेरे नयनों को कोई बड़ी बलाय उपजी है जो प्रतिदिन नीर भर रहने पर भी इनकी प्यास नहीं बुझती। २४३

प्रिय के यश को सुनकर कान शान्त हो जाते हैं और प्रिय का नाम लेकर जीभ भी सुखी हो जाती है। परन्तु प्रिय का मुख देखने के लिए ये नयन हठ बढ़ाकर फूट फूट कर रोने लगते हैं। २४४

२५१

अवलोकति मग जकि रही, अँसुव टरत असराल ।
मनु मुकताहल तोरि तिय, पोखत प्रान-मराल ॥

२५२

आंसु ढरत कज्जल गिरत, हिय पर परत लकार ।
काम राज करवत विरह, खचत यहै सरीर ॥

२५३

तन तावन गावन पिको, घन छावन दिन रैन ।
मन भावन आवन नहीं, सावन ह्वै रहे नैन ॥

२५४

पिय चलते तिय रुदन किय, अजन ढरयो ललाइ ।
ज्यों लाला के फूल पर, भंवर बैठि लटकाइ ॥

२५५

ढरत न अँसुवा लाजतें, रहैं नैन भरि नीर ।
जैसे कातोसार सों, उफन्यो गिरै न खीर ॥

२५६

बिरह अगनि तन तूल सम, आहि अवाज समीर ।
भसम होत राखे भले, नैना हां के नीर ॥

आँखें प्रिय की बाट देखती देखती स्तब्ध हो गई परन्तु आँसू लगातार बहाती जा रही हैं मानों माली ताड़ ताड़कर प्राण रूपी हंस को चुगा रही हैं। २५१

आँसू गिरने के साथ कज्जल भी गिर रहा है और हृदय पर उस काले जल से रेखाएँ पड़ गई हैं और कामदेव विरह रूपी करौत शरीर पर चला रहा है। २५२

कोयल का मधुर गान तन को तपा रहा है, दिन रात बादल छाये रहते हैं पर मन को भानेवाले प्रिय के आने का कोई पता नहीं अत ये नयन सावन हो रहे हैं। २५३

प्रिय के गमन समय प्रेयसी के रोने से आँसुओं के साथ ढुलकनेवाला अंजन ऐसा लग रहा है जैसे लाला नामक लाल पुष्प के ऊपर बैठ कर भ्रमर लटक रहा हो। २५४

नयन, नीर से छलछला रहे हैं पर तु लज्जावश आँसू बाहर नहीं आ रहे हैं जैसे कालाधार के लोह से बनी कड़ाई से उफनता हुआ भी दूध बाहर नहीं गिरता है। २५५

विरह रूपी आग, रुई के समान शरीर में सुलग रही है और आहों की हवा भी आग को सहायता दे रही है पर तु नयनों का नीर (आँसू) ही उसे भस्म होने से बचा रहा है। २५६

२६३

पाणि पलक कुस–बरुनिका, जल आँसू द्विज–मैन ।
पिय बिछुरत मनु नीद कौ, लेत सकलप नैन ॥

२६४

समुझाए समुझत नहीं, पलक देत नहि चैन ।
नीर भरे प्यासे मरं, अजब अनोखे नैन ॥

२६५

मन ही मन दुख सहत अति, कहत बनै नहिं बैन ।
रात दिनां रोवत रहे, तसकर-तिय ज्यौं नैन ॥

२६६

चित-चकमक छतियां-पथर, काम-अगनि कठ गात ।
नैन-नीर बरसत नहीं, तौ तन जरि बरि जात ॥

२६७

काके रँग तुम दृग रँगे, देखत दुहूँ चुवात ।
इनही की बूँदन मनो, छींट छींट भयो गात ॥

२६८

स्याम तिहांरे-विरह दृग, फरत सकज्जल रोज ।
मनो वढावत प्रेम सो, सूर सुताहि सरोज ॥

प्रिय के बिछुड़ते ही– पलकरूपी हाथ में, बरौनी रूपी दर्भ तथा आँसू रूपी जल लेकर कामदेव रूपी ब्राह्मण द्वारा ये आँखें मानों निद्रात्याग का संकल्प कर रही हैं। २६३

ये नयन बड़े ही अजीब और अनोखे हैं जो न तो समझाने से मानते हैं न एक पल भी चैन से रहने देते हैं और जल से भरपूर रहने पर भी प्यासे रहते हैं। २६४

जिस प्रकार चोर की पत्नी मन ही मन में अत्यन्त दुःख सहती है एक शब्द भी कहते नहीं बनता, उसी तरह ये आँखें भी रात दिन रोती हैं कुछ कह नहीं सकतीं। २६५

यदि ये नयन, आँसू जल नहीं बरसाते तो हृदय रूपी चकमक और श्वासों रूपी पत्थर द्वारा पैदा हुई काम की आग से शरीर रूपी काष्ठ कभी का जल गया होता। २६६

हे सखि! तुमने किसके रंग में अपनी आँखों को रँग लिया जो दोनों निरन्तर चुहचुही हुई सी दीखती हैं और तुम्हारा यह शरीर भी मानों उन्हीं की बूँदों से छींट छींट हो गया है। २६७

हे श्याम तुम्हारे विरह में ये नयन काजल सहित आँसू बहाते हैं। मानों सूर्य की पुत्री यमुना को ये नयन कमल प्रेम के कारण बहा रहे हैं (सूर्य का और कमलों का प्रेम प्रसिद्ध है, यमुना सूर्य की पुत्री है)। २६८

२६३

पाणि पलक कुस–बरुनिका, जल-आँसू द्विज–मैन ।
पिय बिछुरत मनु नींद को, लेत सकलप नैन ॥

२६४

समुझाए समुझत नहीं, पलक देत नहिं चैन ।
नीर भरे प्यासे मरें, अजब अनोखे नैन ॥

२६५

मन ही मन दुख सहत अति, कहत बनै नहिं बैन ।
रात दिनाँ रोवत रहैं, तसकर-तिय ज्यौं नैन ॥

२६६

चित-चकमक छतियाँ-पथर, काम-अगनि कठ-गात ।
नैन-नीर बरसत नहीं, तो तन जरि बरि जात ॥

२६७

काके रँग तुम दृग रँगे, देखत दुहूँ चुवात ।
इनही की बूँदन मनो, छींट छींट भयो गात ॥

२६८

स्याम तिहारे-विरह दृग, करत सकज्जल रोज ।
मनो बढावत प्रेम सों, सूर सुताहि सरोज ॥

प्रिय के बिछुड़ते ही– पलकरूपी हाथ में, बरौनी रूपी दर्भ तथा आँसू रूपी जल लेकर कामदेव रूपी ब्राह्मण द्वारा ये आँखें मानों निद्रात्याग का संकल्प कर रही हैं। २६३

ये नयन बड़े ही अजीब और अनोखे हैं जो न तो समझाने से मानते हैं न एक पल भी चैन से रहने देते हैं और जल से भरपूर रहने पर भी प्यासे रहते हैं। २६४

जिस प्रकार चोर की पत्नी मन ही मन में अत्यंत दुख सहती है एक शब्द भी कहते नहीं बनता, उसी तरह ये आँखें भी रात दिन रोती हैं कुछ कह नहीं सकतीं। २६५

यदि ये नयन, आँसू जल नहीं बरसाते तो हृदय रूपी चकमक और छाती रूपी पत्थर द्वारा पैदा हुई काम की आग से शरीर रूपी काष्ठ कभी का जल गया होता। २६६

हे सखि! तुमने किसके रंग में अपनी आँखों को रँग लिया जो ये निरंतर झुरती हुई सी दीखती हैं और तुम्हारा यह शरीर भी मानो दुःखों की बूँदों से छोट छोट हो गया है। २६७

हे श्याम तुम्हारे विरह में ये नयन कज्जल सहित आँसू बहाते हैं। मानों सूर्य की पुत्री यमुना को ये नयन कमल प्रेम के कारण बहा रहे हैं (सूर्य का और कमलों का प्रेम प्रसिद्ध है, यमुना सूर्य की पुत्री है)। २६८

२६३

पाणि पलक कुस–बरनिका, जल आँसू द्विज–मैन ।
पिय बिछुरत मनु नींद को, लेत सकलप नैन ॥

२६४

समुझाए समुझत नहीं, पलक देत नहिं चैन ।
नीर भरे प्यासे मरे, अजब अनोखे नैन ॥

२६५

मन ही मन दुख सहत अति, कहत बनै नहिं बैन ।
रात दिनाँ रोवत रहैं, तसकर-तिय ज्यों नैन ॥

२६६

चित-चकमक छतियाँ-पथर, काम अगनि कठ-गात ।
नैन-नीर बरसत नहीं, तो तन जरि बरि जात ॥

२६७

काके रँग तुम दृग रँगे, देखत दुहूँ चुवात ।
इनही की बूँदन मनो, छींट छींट भयो गात ॥

२६८

स्याम तिहारे-विरह दृग, करत सकज्जल रोज ।
मनो चढ़ावत प्रेम सों, सूर सुताहि सरोज ॥

प्रिय के बिछुड़ने ही- पत्रकरूपी हाथ में, बरौनी रूपी दभ तथा आँसू रूपी जल लेकर कामदेव रूपी ब्राह्मण द्वारा य आँखें मानों निद्रात्याग का सकल्प कर रही हैं। २६३

य नयन बड़े ही अजीब और अनोखे हैं जो न तो समझाने स मानत है न एक पल भी चन से रहने देत हैं और जल स भरपूर रहन पर भी प्यासे रहत हैं। २६४

जिस प्रकार चोर की पत्नी मन ही मन में अत्यन्त दुख सहती है एक शब्द भी कहते नहीं बनता उसी तरह य आँखें भी रात दिन रोती हैं कुछ कह नहीं सकती। २६५

यदि ये नयन आँसू जल नहीं बरसाते तो हृदय रूपी चकमक और छाती रूपी पत्थर द्वारा पैदा हुई काम की आग म शरीर रूपी काष्ठ कभी का जल गया होता। २६६

हे सखि! तुमने किसके रंग म अपना आत्मा को रंग लिया जो दोनों निरन्तर घुली हुई सी दीखती हैं और तुम्हारा यह शरीर भी मानो दही की बूंदों स छींट छींट हो गया है। २६७

हे श्याम तुम्हारे विरह म ये नयन काजल सहित आँसू बहाते हैं। मानो सूर्य की पुत्री यमुना का य नयन कमल व्रत के कारण बना रहे हैं (सूर्य का और कमलों का प्रम प्रसिद्ध है, यमुना सूर्य की पुत्री है)। २६८

करेरे कटाक्ष

२६६

राधा के दृग खेल मे, मूंदे नन्द कुमार।
करन लगी दृग-कोर को, भई छदी उर पार॥

२७०

कौन सखो अधमूंदना, तो सो खेलै रैन।
हाथ कटाछिनु कटत हैं मूँदत तेरे नैन॥

२७१

तिय, तुव नैन–कटाछि ये, निकसि जात तन पार।
बिस यह काहे देति है, अजा बारम्बार॥

२७२

ज्ञान गाय तें लेत दुहि दुल्लभ, धीरज खीर।
तिय-कटाछ-कांजी परत, बिगरत तुरत गँभीर॥

रसिका के नेत्र आँखमिचौनी के खेल में नन्दकुमार ने मूँदे थे, बस उसी से हाथों में आँखों की लीला कोरें चुभ गई और हृदय के आरपार होगई। २६९

हे सखि! नन्दनाथ आँखमिचौनी कौन गत? क्योंकि तेरी आँखें मूँदते समय तेरे नीरज-कटाक्षों से हमारे तो हाथ कट जाते हैं। २७०

प्रिये! तेरे कटाक्ष बाण तो आते ही शरीर को छेदकर पार हो जाते हैं फिर यह विष के समान अंजन, बार बार क्यों लगा रही हो? २७१

बाल रूपी धागे से [illegible] हुआ धव रूपी [illegible] नागे के कटाक्ष रूपी कात्री के पड़ते ही तुरत बिगड़ जाता है। २७२

२७३

भौंह कुटिल बरुनी कुटिल, नैनहु कुटिल दिखात।
बेधन कौं नेही हियौ, क्यों सूये ह्वै जात।।

२७४

चतुर चितेरे तुव सखी, लिखत नहीं ठहराई।
कलम छुवति कर आगुरी, कटी कटाछिन जाई।।

२७५

कहा करें जो आंगुरी, अनी घनी चुभि जाइ।
अनियारे चख लखि सखी, काजर देत डराइ।।



देखने में तो भौंह टेढ़ी हैं, बरौनियाँ भी टेढ़ी हैं और नेत्र भी वक्र हैं परन्तु प्रिय का हृदय बींधने के लिए ये सब बड़े सीधे हो जाते हैं। २७३

चतुर चित्रकार भी तेरी तसवीर बनाने में सफल नहीं होते क्योंकि तेरे कटाक्षों से उनके हाथों की अंगुलियाँ और कलम दोनों ही कट कट जाती हैं। २७४

क्या करें, जबकि अंगुली में नयनों की तीखी अनी गहरी चुभ जाती है इसलिए अनियारे नयनों को देखकर काजल लगाने में सखी को डर लग रहा है। २७५



कजरारे नयन

२७६

बुरो तऊ लागै भलो, भलो ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीकौ लग, काजल जदपि मलीन ॥

२७७

रे मन रीति विचित्र इहि, तिय नैननि को चेत।
विष काजर निज खाइक, जिय औरन को लेत ॥

२७८

यौं छवि पावत है लखो, अजन आंजे नैनु।
सरस बाढ सँफन धरो, मनु सिकलीगर सैनु ॥

२७९

रूप ठगोरी डारिकै, मोहन गौ चित चोर।
अजन मिस जनु नन ए पियत हलाहल घोर ॥

बुरी वस्तु भी अच्छी जगह स्थित होने पर सुन्दर दिखाई देने लगती है जैसे स्त्री के नयनों में काला काजल भी सुहावना हो जाता है। २७६

स्त्रियों की आँखों की यह विचित्रता है कि विष रूपी काजल तो स्वयं खाती हैं और जान दूसरों की लेती हैं इसलिए हे मन, सावधान रहना। २७७

अंजन आँजन से नयन ऐसे सुहावने लगते हैं मानो सिकलीगर ने धार लगाकर तलवार रख दी हो। २७८

रूप के द्वारा ठगी करके मोहन चित्त चुरा लेगया। अब ये नयन, काजल के मिस से हलाहल विष पी रहे हैं (जैसे सारी सम्पत्ति लुट जाने पर कोई आत्महत्या के लिए विष खाता हो)। २७९

२८०

एकु तो नैना मदभरे, दूजै अंजन सार ।
बूझि बावरी देति को, मद-मातेनु हथियार ।।

२८१

दीन हीन नेहीन कों, रौंदि न करै अचैन ।
अंजन आँजू भर दिए, दृग-गज-माते नैन ।।

२८२

सखी प्रिया की देह मे, सजे सिंगार अनेक ।
कजरारी अँखियान मे, भूली काजरु एक ।।

२८३

अपनी-अपनी ठौर पर, सोभा लहत विसेष (ख) ।
पाँय महावर ही भलो, नैना अंजन रेख ।।



पहले ही से ये नयन मदमत्त हैं फिर इनमें अंजन क्यों सारा जा रहा है अरी बावरी कुछ तो विचार कर, मद से मस्त हुए को कोई हथियार दिया जाता है ? २८०

दीन हीन प्रेमियों को कुचलकर दुखित न कर दें इसीलिए इन मदमत्त नयन कुञ्जरों को अंजन रूपी बेड़ी डाली गई है। २८१

सखी ने प्रिया की देह में अनेकों शृंगार सजाए परन्तु नायिका की स्वभावतः कजरारी आँखें होने के कारण शृंगार करते समय एक काजल लगाना भूल गई। २८२

सारी वस्तुएँ अपनी अपनी जगह पर शोभा देती हैं जैसे पैरों में महावर भला लगता है तो आँखों में काजल ही सुहावना लगता है। २८३



नयन बाण

२८४

कोमल कमलन से कहैं, तिन्हे न नेक सयान।
होत पार लागत हियै, नम मन के बान।।

२८५

चपल-चित्त वेधो निरखि, याही डरनि दुरात।
नैन बान वै देखिकै, लाज नहीं ठहरात।।

२८६

लाल तिहारे नैन-सर अचरिज करत अचूक।
बिन कचुक छेद करै, छाती छेद छटूक।।

२८७

नागरि—नन—कम न—सर, करत न ऐसी पीर।
जैसे करत गँवारि के, दृग-धनुहो के तीर

जो इन नयनों को कमलों से भी कोमल बतलाते हैं उन्हें जरा भी विचार नहीं। ये तो कामदेव के बाण हैं जो लगते ही हृदय के पार हो जाते हैं। २८४

जिन नयन बाणों द्वारा चंचल चित्त भी बींधा गया उनसे बिंध जाने के डर में लाज छिप रही है और वहाँ नहीं ठहरती है। २८५

हे लाल, तुम्हारे नयन-बाण आश्चर्यजनक अपूर्व वार करते हैं और बिना कवचवाली छाती को छेद छेदकर देते हैं। २८६

नगर में निवास करनेवाली चतुर नारी के नयन रूपी धनुषबाण वैसी पीड़ा नहीं करते हैं जैसे एक गँवार स्त्री की आँख रूपी धनुही से निकले (स्वाभाविक) तीर पीड़ा करते हैं। २८७

२८८

चतुरनि के उर चुभति है, नैन-बान की चोट।
मूरख डर लागत नहीं, मूरखता की ओट।।

२८९

नैन-बान चलिबो करैं, नक न थाकति नारि।
तजि तजि मूरख जननि को चतुरनि मारति टारि।।

२९०

चली जात चितवत अली, घूँघट पट की ओट।
ननन के सर साधिकैं, करति फिरति हैं चोट।

२९१

लागत कुटिल कटाछि-सर, क्यों न होय बेहाल।
कढत जु हियैं दुसाल कै, तऊ रहत नट-साल।।

२९२

नैन बान जाको लगै, कहि धौं ओवध काहि।
कुच-टकोर पटिया-भुजा, अधर-पान पथ ताहि।।

२९३

चल-सर-छत अद्भुत जतन, बधिक-वैद्य निज हत्य।
उर उरोज भुज अधर रस, सेक पिण्ड पट पत्य।।

नयन रूपी बाण का प्रहार चतुर नागरिकों के हृदय में ही चुभता है, मूर्खों के हृदय में नहीं। क्योंकि वहाँ मूर्खता की ओट जो है। २८८

नयनों के बाण निरंतर चलते ही रहते हैं किन्तु चलानेवाली नायिका जरा भी नहीं थकती है और मूढ़ (अरसिक) जन को छोड़कर चतुर व्यक्तियों को चुन चुन कर मारती है। २८९

घूंघट की ओट से सुरक्षित होकर यह नायिका टेढ़ी चितवन से देखती हुई नयन बाणों से निशाना लगाकर फिर फिर कर चोटें करती चली जा रही है। २९०

जिसको ये कुटिल-कटाक्ष रूपी बाण लग जाते हैं क्यों न वह बुरे हाल हो? मानलो, यह दुष्ट शल्य हृदय से निकल भी जाय तो भी इसकी कसक या अन्दर टूटा हुआ काँटा तो रह ही जाता है। २९१

जिसको नयन बाण ने बींधा है उसका और क्या इलाज है? उसे तो बस स्तनों का सेक दें और भुजा रूपी पट्टी से कसकर बाँधें। और अधर पान का पथ्य दिया जाय। २९२

नयन बाण के घाव का अद्भुत उपाय उसी बधिक रूपी वैद्य के अपने हाथ में है। नयन बाण से घायल के लिए उसकी विशाल आँखों का सेक, उन्नत उरोजों का पिण्ड (पोटिस) और लम्बी लम्बी भुजाओं की पट्टी तथा पथ्य के रूप में अधर रस दिया जाय। २९३

२६४

दृगनु लगत बेधत हियहिं, बिकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तें बिषम, ईछन तीछन-बान॥

२६५

बान बेधि, सब बिधे कौं, खोज करति हैं जाइ।
अदभुत-बान-कटाछ, जिहि बिध्यो लगै सँग आइ॥

२६६

प्रीतम नैनन मे गिरी, जिन नैनन की सैन।
फिर काढन को चाहिए, वे ही तीखे नैन॥

२६७

अनियारे तीखे कुटिल, अंकुस से दृग बान।
लागत सीधे आयकै, पाछे खैंचत प्रान॥

२६८

भुँह-कमान, अंजन-चिला, नैन-बान अतिसार।
चतुरनि के मन-मृगनिकौं, मारत नारि निहार॥

२६९

लोयन लागे लाल सों, कहा करौं बस नाँहि।
खैंचे आवैं धनुष ज्यों, छूटैं सर लौं जाँहि॥

ये तेर कटाक्ष रूपी पने बाण अ य सब बाणो से विलक्षण हैं जो लगते तो आँखों म हैं पर वेधते हृदय को हैं और विकल दूसरे अगो को करते हैं। २६४

बाण से बीधने के पश्चात् सब (शिकारी) जा कर बिधे हुए (लक्ष्य) की खोज करते हैं, पर तु यह नयन कटाक्ष का बाण एसा है कि इसस बिधा हुआ अपने आप इसी से लगा हुआ (बींधनेवाले के पास) आ जाता ह। २६५

हे प्रिय, जिन ननो की सन इन मेरी आखो मे आकर गिरी ह उसे निकालने के लिए व ही तीखे नयन चाहिए। २६६

धारदार, तीखे और कुटिल अकुश के समान नेत्र रूपी बाण लगने के समय तो सीधे आकर लगत हैं पर पीछे प्राणो को खीचने लगते है। २६७

भौंह रूपी धनुष म कज्जल की डोरी पर तीक्ष्ण नयन बाण चढाकर चतुर नागरिको के मन मग को यह स्त्री दव देख कर मार रही ह। २६८

नयनों को प्रिय स लगन लग चुकी ह अब मैं क्या करू इन पर मरा बश नहा। यहाँ से खींचती हूँ तो धनुष की तरह कठिनता स खिचत हैं और छोड़त ही बाण की तरह छूटत हैं। २६९

कामायुध-नयन

३०६

भामिनि भौंह कमान कसि, तिलक भाल धरि भालि।
मानो काहू मारि है, मदन आज के काल्हि॥

३०७

कियें भरोसो नैन को, नागर मेरे जान।
ना तरु क्यों जुग जीततो, काम फूल के बान॥

३०८

भौंह-धनुष मनमथ गहे, तिरछी चितवन बान।
फूलन को आयुध कहा, ऐसें करत निदान॥

सुदरी के भौहो की कमान कस कर, उसपर ललाट म रचित तिलक का बाण सधान करके मानो यह कामदेव आज या कल म किसी न किसी को अवश्य मारेगा। ३०६

मेरे विचार म तो सुन्दरियों के नयनो के बल पर ही सब कार्य हो रहा है अन्यथा यह कामदेव पुष्प बाण से इस ससार को कैसे जीतता ? ३०७

पुष्पों के आयुध से जब कुछ नही हुआ तो अत मे भौंह रूपी धनुष और कुटिल कटाक्ष रूपी बाण को ही कामदेव ने धारण किया। ३०८

चंचल नयन

३०९

ऐंचि आँचि राखौं तऊ, पल न एक ठहराय।
नैनन में कठ पूतरी, जित प्रीतम तित जाय॥

३१०

पिय को चचल चित्त अति, तिय के चचल नैन।
दोऊ एक सुभाइ तें, क्यो न लहैं सुख चैन॥

३११

सकुचि न रहियै, स्याम सुनि, ए सतरौंहे बैन।
देत रचौंहो चित कहे, नेह नचौंहे नैन॥

३१२

चचलता पायन हुती बाल राज के जोर।
जोबन-नृपति अतक तें, भजी चढति दृग ओर॥

खींचकर, पकड़कर रखने पर भी ये आँखों की पुतलियाँ एक क्षण के लिए भी नहीं ठहरती हैं। और जिस ओर प्रीतम बैठे हैं उसी ओर जा रही हैं। ३०९

प्रिय का चित्त और नायिका के नयन दोनों ही अत्यन्त चंचल हैं। दोनों एक ही स्वभाव के होने के कारण परस्पर का सुख क्यों न प्राप्त करें? ३१०

हे घनश्याम! रोष भरे टेढ़े वचनों को सुन, संकोच करके आप चुप न बैठे रहिए (मनाते रहिए) क्योंकि नेह में चंचल हुए ये नयन, इस नायिका के चित्त का रुचने पर आया हुआ सा कह रहे हैं। ३११

बाल्य राजा के शासनकाल में (बालकपन में) जो चंचलता पाँवों में थी वह यौवन महाराजा (युवावस्था) के आतंक से भागकर नयनों में चढ़ गई है। ३१२

कमल-नयन

३१३

सुन्दरी सेज सँवारि कै, साजे सकल सिंगार।
दृग-कमलन के द्वार पै, बाँधे बंदनवार॥

३१४

विकच अरुन मेचक बरन, गुंजा बीज समान।
किंसुक मनो मनोज को, काल कूट जुत बान॥

३१५

फूल जु फूले देखि ससि, सो इन्दीवर नैन।
कहत जान मुख चन्द ते, ना बिछुरै दिन रैन॥

३१६

लखत लाल मुख पाइहौं, बरनि सकै नहिं बैन।
लसत बदन सतपत्रसो, सहस पत्र से नैन॥

उस सुन्दरी ने सार शृंगार सजकर सज सँवार रखी है और आपके स्वागत के लिए द्वार पर नयन रूपी कमलों की वंदनवार बाँध रखी है (नायिका द्वार पर खड़ी आपकी बाट देख रही है)। ३१३

घुंघची—चिरमी के बीज के समान लाल और काले ये विकसित नयन हैं या कामदेव के विष भरे पुष्प बाण हैं। ३१४

जो फूल चन्द्रमा को देखकर फूलता है वह इन्दीवर नामक कमल होता है पर जान कहते हैं ये नन इन्दीवर तो मुख चन्द्र से दिन रात कभी भी विलग नहीं होते। ३१५

जान की मुसक्छवि देखने से ही बनती है उसे वर्णन नहीं किया जा सकता है उनका मुख शतदल कमल जैसा है और आँखें सहस्र पत्र जैसी। ३१६

३१७

मीन ममोले मिरग पुनि, निरखत सकल लजात ।
मुख पानिप मे नैन यो, ज्यों जल मे जलजात ॥

३१८

अन देखे मुद्रित रहैं, देखे तें अति चैन ।
जगत-मित्र हैं रावरे, जलज हमारे नैन ॥

३१९

मुदित छबीले छैलके, वदन प्रभाकर आहि ।
बिनु देखे मुरझै, मुलखि, दृग-पकज विकसाहि ॥

३२०

तन चपा मन केवडा, सीतल अमृत बन ।
प्राण-पुष्प के बाग मे, अजब फूल दुइ नैन ॥

३२१

जित प्रीतम तित जात हैं, और देखि सकुच न ।
सूरज गुल के फूल ज्यो, फिरें तिया के नैन ॥

३२२

नैन कमल पर राज हो, भृकुटी कुटिल सुभाय ।
मनहु लोभ मकरद के, मधुकर रहे लुभाय ॥

मछलियां, बीरबहूटी और मृग ये सभी जिन नैनों को देखकर लज्जा अनुभव करते हैं वे नयन मुख के पानी (लावण्य) में ऐसे शोभित हैं मानो जल में कमल हों। ३१७

हे प्रिय! तुम्हारे नयन सूर्य हैं और हमारे नयन कमल हैं अतएव उन्हें न देखने पर तो मुँद जाते हैं और देखकर प्रसन्न (विकसित) हो जाते हैं। ३१८

बने ठने हुए सुन्दर प्रिय का प्रसन्न मुख सूर्य के समान है उसे न देखने पर तो हमारे नयन रूपी कमल मुरझा जाते हैं और देखते ही खिल उठते हैं। ३१९

प्राण पुष्प (प्रिय) के बगीचे में देह यष्टि तो चम्पा की डाल है और मन केवड़ा की सुरभि है। अमृत के समान वचनों की शीतलता है और अजीब तरह के दो नयन रूपी पुष्प वहाँ खिल रहे हैं। ३२०

ये नयन बिना संकोच के (विकसित) उधर ही चले जाते हैं जिधर प्रिय हैं। सूर्य मुखी पुष्प की तरह स्त्री के नेत्र भी प्रिय की ओर फिर रहे हैं। ३२१

नयन रूपी कमलों पर ऐसी भौंहें ऐसी सुशोभित हैं मानो पराग के लोभ में

३२३

लागे करन कटाच्छि दृग, जबहिं सचरयौ मैन।
जैसे मधुकर भारतें, नीरज डोलत ऐन॥



जसे भौरे के भार से कमल हिलने लगते हैं उसी प्रकार, अगो मे काम का सचार होने से ये दृग, कटाक्ष करने लगे है। ३२३



मृग नयन

३२४

खेलत मार सिकार है, डोरे पास समेत।
नैन मृगन सो बाँधिकै नैन मृगन गहि लेत॥

३२५

सरिता-हार पहार-कुच, खेलत मदन सिकार।
हौं बरजौं दृग मृगनुकौं, ह्वाँ जिन जाव गँवार॥

३२६

बर जीते सर मन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तें, हरि! नीके ए नैन॥

३२७

खेलत सिखए अलि भल, चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन मृग, नागर नरनु सिकार॥

डार और फाँसी लिए कामदेव शिकार खेल रहा है वह नयन रूपी मगो से ही नयन रूपी मगो को बाँधकर पकड लेता है। ३२४

जहा उज्ज्वल हार रूपी नदी स्तन रूपी पहाडो म बह रही है वहाँ कामदेव शिकार खेला करता है। अत मैं मेरे नयन रूपी मगो को मना करता हूँ कि 'अरे गवारो वहाँ मत जाओ। ३२५

हे हरि! मैंने तो ऐसे नेत्र कभी नहीं देखे इन्होंने तो कामदेव के बाणों को भी बरबस जीत लिया है और हरिणी के नयनो से भी सुन्दर हैं। ३२६

हे सखि! कामदेव रूपी चतुर अहेरी ने कानन चारी (कानो तक लम्बे) मगो को नागरिक लोगो का शिकार करना अच्छी तरह सिखलाया है। ३२७

३२८

नेह परा मैदान तन, मन-सारंग वन अग।
मैननि के डोरे फँदा, गहि राखत तिय सग ॥

३२९

सागी भारी नीलकी, ओट अचूक चुकै न।
मो मनु-मृग करवर गहत, अहे अहेरी नैन ॥

३३०

प्रेम अहेरी की अरे, यह अद्भुत गति हेर।
कीनें दृग-मृग मीत के, मन चीते पै सेर ॥



अमिय हलाहल मदभरे]

अग रूपी जगल में नेह मदान मे पड़े हुए मन मृग को यह नायिका नयनों के डोरो के फदे से बाँधकर अपने साथ रखती है। ३२८

साडी रूपी झाडी की ओट होते हुए भी नयन रूपी अचूक शिकारी नही चूकता है और मेरे मन रूपी मृग को ढूँढ लेता है। ३२९

इस प्रेम रूपी शिकारी की अद्भुत चतुराई को तो देखो, जिसने प्रिय के नयन मृगों को अपने मनचाहे पर (चहेते पर) सेर बना दिया है। ३३०

•

३३५

प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजति लोचन लोल ।
खेलति मनसिज-मीन जुग, जनु विधु मडल डोल ॥



बार बार प्रभु की ओर देखते हुए और बार बार (लज्जा से) पृथ्वी की ओर देखते हुए चंचल नयन इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानो चन्द्रमण्डल के हिंडोले में कामदेव का मछलियों का जोड़ा खेल रहा हो। ३३५

दृग विहग

३३६

लसत चारु तारनि सहित, तिय लोचन कमनीय।
चढे खजरोटनि मनो, च चरीक रमनीय॥

३३७

जरतारी सारी ढके, नैन लसति मतिराम।
मनो कनक-पजर परे, खजरीट अभिराम॥

३३८

खजन कमल चकोर अलि, जिते मीन मृग ऐन।
क्यो न बडाई को लहैं, तरुनि तिहारे नैन॥

३३९

रूप जाल नँदलाल के, परि करि बहुरि छुटै न।
खजरीट मृग मीन से, ब्रज बनितन के नैन॥

नायिका के मनोहर नयन सुन्दर तारिकाओ सहित सुशोभित हो रहे हैं मानों, खजरीट पर चढे हुए भ्रमर शोभा दे रहे हो। ३३६

मतिराम कहते हैं कि जरीदार साडी मे ढके हुए नयन इस प्रकार शोभा दे रहे हैं मानों सोने के पिंजरे म खजरीट पक्षी सुशोभित हो। ३३७

जबकि खजन, कमल, चकोर, भ्रमर मीन और मग इतनो को भी इन्होंने जीत लिया, तब हे तरुण तर नयन क्या न महत्त्व प्राप्त करें। ३३८

खजरीट, और मग एव मीन के समान ब्रजबालाओ के नयन, नदलाल रूप जाल म फसकर फिर नही छूटते। ३३९

३४०

कजन हू तें डहडहे, बिनु अजन छवि ऐन।
खजन गति गजन महा, पिय मन रजन नन॥

३४१

दृग-खग लखि उन रूप कों, उतरि फँसे छवि फद।
गहे प्रीत पजर परे, मँन बधिक आनन्द॥

३४२

नैन-पंखेरू विरह के, फँदे पेम के जाल।
उरभत हो चकित भये, उडि नहिं सकत जमाल॥

३४३

दृग खजन औचक फँसे, बीच जुलफ के जाल।
भावै इनको किरिचियै, भावै इनको पाल॥

३४४

वनतन कों, निकसत, लसत, हँसत हँसत इत आइ।
दृग खजन गहि लै गयौ, चितवनि-चंपु लगाइ॥

३४५

सो पछी उरझै रहै, जो डोरनि सँगहोय।
डोरे खजन नैन सो, उरझै औरे कोय॥

कमलों से भी अधिक प्रफुल्लित ये बिना अंजनवाले नेत्र शोभित हो रहे हैं ये अपनी चंचल गति एवं वर्ण से खंजन का मान भंग करनेवाले और प्रिय का मनोरंजन करनेवाले हैं। ३४०

नयन रूपी पक्षी रूप को देखकर उसकी छवि के फंदे में फंस गये हैं और उन्हें काम रूपी बहेलिये ने आनन्दपूर्वक पकड़कर प्रीति के पिंजरे में डाल दिया है। ३४१

जब नयन रूपी पक्षी वियोग रूप फंदोंवाले प्रेम जाल में उलझ गये, तब आश्चर्यचकित हुए। जमाल कहते हैं कि अब वे उड नहीं सकते। ३४२

मेरे दृग सज्जन तेरी जुल्फों के जाल में फंस चुके हैं अब चाहे इन्हें (तलवार की नोक से) मार डाला चाहे इन्हें पालतू बनालो। ३४३

हे सखि! मेरे बाहर निकलने ही, वह खेलता हुआ हँसता हँसता इधर आकर मेरे नयन-सजनों को अपनी चितोनी के चेप में पकड़कर वन की ओर ले गया। ३४४

जो पक्षी डोरों के साथ (बंधन के सहित) होता है वही उलझता है पर यहाँ तो सज्जन के समान नयनों के डोरों में दूसरे ही उलझते हैं। ३४५

नयन तुरग

३५४

नैकु न थाकत पथ मे, चले जु कोस हजार।
चचल लोइन-हयनि पर, भये जात असवार ॥

३५५

मानत लाज लगाम नहिं, नैक न गहत मरोर।
होत तोहिं लखि बालके, दृग-तुरग मुँह जोर ॥

३५६

जहँ जहँ नैन सलूणिया, तहं तहँ चित्त अरेह।
मूसन खोट तुरग ज्यो, पग आगे न धरेह ॥

३५७

हुलसि चढ्यौ चित नागरी, नैन तुरी दुव तेज।
नवल-नेह-मदान मे, करत फिरत मुँह मेज ॥

चचल नयन रूपी घोडों पर सवार होकर भले ही हजारो कोस की यात्रा कर लो मार्ग म कहा भी थकावट नही आयगा । ३५४

तुझे देखकर उस बाला के नयन अश्व मुँहजोरी करने लगते हैं जरा भी इधर उधर मुडना नहीं चाहते और लगाम को बिलकुल नही मानते । ३५५

जहाँ जहाँ सलोने नयन दिखाई देते हैं वही पर इनका चित्त अड जाता है और अडियल घोडे की तरह एक कदम भी आगे नही रखता । ३५६

हे नागरी, तेरे नयन रूपी तेज घोडे पर उमगपूर्वक चढा हुआ यह चित्त, नये प्यार के मैदान मे मुँहजोरी करता हुआ फिर रहा है । ३५७

३५८

लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ए मुँह-जोर तुरग लो, ऐंचत हू चलि जाहिं॥

३५९

अरुन जु डोरे दृगनि मे, साँटैं उपरी ऐन।
निपट चपल तातें भये, काम सधाये नैन॥

३६०

नैन तुरगम अलक छवि,-छरो लगी जिहिं आइ।
तिहिं चढि मन चचल भयो, मति दीनी बिसराइ॥

३६१

करे चाह सों चुटुकि कं, खरं उडौंहे मैन।
लाज नवाएँ तरफरत, करत खूँद सो नैन॥

३६२

ताजी ताजी गतिन ए, तब तें सीखे लैन।
गाहक मन राजी करैं, बाजी तेरे नैन॥

ये नयन मेरे वश में नहीं हैं और न लाजरूपी लगाम को ही मान रहे हैं ये मुहजोर घोड़े की तरह खींचने पर भी प्रिय की ओर चल ही जाते हैं। ३५८

काम के द्वारा सिखाये हुए इन नयन तुरगों पर जो लाल डोरे दिखाई पड़ते हैं वे चाबुक की मार के निशान हैं और इन्हीं के कारण ये इतने तेज (चचल) हुए हैं। ३५९

जिन नयन रूपी घोड़ों को अलकावलि की छवि रूपी बेंतें लगी हैं उन पर चढ़कर मन और भी चचल एव विवेकहीन हो गया। ३६०

चाह रूपी चुटकी से चटककर, कामदेव ने इन नयन रूपी घोड़ों को उछल उछल कर चलनेवाले बना दिये। अब ये लाज लगाम से रोके जाने पर भी खूँद रहे हैं और आतुर हो रहे हैं। ३६१

जब से इन्होंने नई चालों में चलना सीखा है, तभी से ये अरबी घोड़ों के समान तेरे नैन, ग्राहक (चाहनेवाले) के मन को (अपनी चचल चालों से) आनन्दित कर रहे हैं। ३६२

दृग-मतंग

३६३

मन बंधन नाहिन रहत, नैना कियौ करोरि ।
वर कुंजर ज्यौं मद बहै, चलहित सकल तोरि ॥

३६४

नारी नैन गनै न जग, जनु निर अंकुस नाग ।
घेरी हेरी लाज की, मत्त न लागत माग ॥

३६५

घूंघट ओट रहै न धरि, भिरि भजत जस जोर ।
नागरि-नैन कि नाग नव, उमडि चलत चहुं ओर ॥

३६६

अति उमडैं, मानैं नहीं, भौहैं-अंकुस लाज ।
नासा-आड उलंघ कैं, नैन-मत्तगजराज ॥

जैसे श्रेष्ठ हाथी मदमस्त होकर साँकल तोड़कर चल ही देता है, वैसे ही करोड़ उपाय करने पर भी ये नयन मन के बन्धन में नहीं रहते हैं। ३६३

अंकुश को न माननेवाले हाथी की तरह, नायिका के नयन भी जगत् को नहीं गिनते हैं। और मतवाले हाथी को जैसे बेड़ी नहीं लगती है वैसे ही इनको लाज नहीं लगती है। ३६४

हे नागरी ये तेरे नयन हैं या नये हाथी हैं, जो घूँघट के किले को न गिनते हुए जोर से भिड़कर उसे तोड़ रहे हैं और उमड़कर आगे और चल पड़े हैं। ३६५

भौंह रूपी अंकुश की परवाह नहीं करते हुए ये नयन रूपी मस्त गजराज नासिका की आड़ को लाँघकर उमड़ उठे हैं। ३६६

३६७

जोगेस्वर गुर डर डरैं, भोगी भूलैं चैन।
कहत नरिन्द करिन्द ह्वै, नागरि तेरे नैन॥

३६८

झटकै लाज जजीर झुकि, पटकै मुनि मन मारि।
दृग-मदमत्त मतग ह्वै, हटक रहत नहिं हारि॥

३६९

बल तोरत सकल सकुच, पल अकुस बस हैं न।
उररि अगाऊ जात हैं, गज मतवारे नैन॥

३७०

तप, जप सजम, सील, सत जुगत मुगत की जात।
इन यन फर न दयाल दिन, दृग-गयद उतपात॥

३७१

कोरी कजरे रेख करि, जोरी जरे जँजीर।
गोरी-दृग-गजराज गुन, भजन सजन भीर॥

३७२

दत-कटाछि अनत सित, स्याम स्यामता जानि।
नैन-नाग सत सील बन, खिजि, भजत बल खानि॥

बड़े बड़े संन्यासी योगी भी इनके डर से डरते हैं और इन्हें देखकर भोगी भी चन भूल जाते हैं नरिंद कहते हैं—हे नागरी ये तेरे नयन दो हाथियों के समान हैं। ३६७

मुनिगणों के मन द्वारा मारे जाने पर भी और लाज रूपी साँकलों से भुकाकर झटका देने पर भी ये नयन रूपी दो मस्त हाथी हारकर हटक में नहीं रहते हैं। ३६८

मतवाले हाथी के समान ये नयन, पलक रूपी अंकुश के वश नहीं हैं। बल लगाकर जंजीर (बंधन) को तोड़ देते हैं और बरबस आगे बढ़ जाते हैं। ३६९

दयाल कहते हैं कि जप, तप, संयम और सत्य आदि उपायों से जहाँ मुक्ति प्राप्त की जाती है उस (शरीर रूपी) वन में, अरे नयन हाथी ! उत्पात न मचा। ३७०

काजल की रेख रूपी जंजीर में बँधे हुए ये गोरी के नयन, गजराजों की जोड़ी हैं जो सज्जनों की भीड़ को चीरनेवाली हैं। ३७१

पूर्ण शुभ्र कटाक्ष रूपी दाँतवाले एवं कृष्णता से काले वर्णवाले नयन रूपी हाथी वन की खान हैं वे बिढ़कर सत्य और सदाचार के वन को उजाड़ देते हैं। ३७२

३७३

अति मतवारे मदन-मद, हद न रहत चित-चोज।
दारा के दृग-दुरिद ह्वै, फारत जत सत-फौज ॥

३७४

फारत तप जप फौज फिर, नैन नारि के नाग।
डारत डोहि दयाल कहि, मन-सर परम अथाग ॥

३७५

बाल खभाले सो बँधे, वारण-नैन विसाल।
बौरि न मारत देखिये, मार करत बेहाल ॥

३७६

अरुन सिंदूर भरे खरे, सकुच बाग बस हैं न।
जित जान तित परत हैं, ये जग खूनो नैन ॥

३७७

नेही—दृगतन क्यो सकै, इनको झोंकैं ओड।
मतवारे दृग गज कहूँ, ऐसें दीजतु छोड ?

३७८

मद-मोकल जब धुलत हैं, तेरे दृग-गजराज।
आइ तमासौ जुरत है, नेही-नैन-समाज ॥

काम के मद से अत्यन्त मतवाले, चित्त को चमत्कृत करनेवाले ये नायिका के नयन, हाथी हो गये हैं और अपनी सीमा (वश) में नहीं रहते हैं। ये यतियों की सत्य शील शान्ति की सेना को छिन्न भिन्न कर देते हैं। ३७३

रसनिधि कहते हैं कि नायिका के नयन रूपी हाथी तप और जप की फौज को फिर फिर कर छिन्न भिन्न कर देते हैं। और पूर्ण एवं थाहरहित मन रूपी सरोवर को आन्दोलित कर डालते हैं। ३७४

लाला रूपी खंभे में बंधे हुए ये विशाल नयन रूपी हाथी दौड़कर मारते हुए तो दिखाई नहीं देते हैं परन्तु इनकी मार बुरा हाल कर देती है। ३७५

सिन्दूर लगे हुए से, लाल नयन रूपी हाथी मरोड़ रूपी अंकुश के वश में न रहने वाले, संसार की हत्या करनेवाले हैं। ये जहां जान पहचान हो वहीं जा पड़ते हैं। ३७६

मद से मस्त नयन रूपी हाथियों को क्या इस प्रकार खुला छोड़ा जाता है? (तुम्हें ज्ञात नहीं कि) इनका झोंका (धक्के) स्नेह भरे नयन किस प्रकार रोकेंगे? (सहेंगे)। ३७७

मस्ती से मुकुलित हुए (स्वच्छन्द) तेरे नयन गज जब खुलते हैं तब प्रेमी नयनों का समूह तमाशा देखने को एकत्रित हो जाता है। ३७८

३७६

मैन महावत दृग-गजन, हुलसत वाही ओर ।
लाखन मे लखि लेत हैं, हिय ही कौं चितचोर ॥

३८०

जब छूटत भल थान तें, मतवारे गज नैन ।
नेहिन-दल कों चलत है, दकर ठोकर-सैन ॥

३८१

अजन आँदू सो भरे, जद्यपि तुव गज-नैन ।
तदपि चलावत रहत हैं, झुकि झुकि चोटें सन ॥

३८२

छूटे दृग गज मोत के, बिच यह प्रेम बजार ।
दोजौ नैन दुकान के, महुकम पलक किवार ॥

कामदेव रूपी महावत दृग रूपी गजियों को उसी ओर बढ़ा रहा है जिस ओर हृदय के चोर की गायों की भीड़ में देख चुका है। ३७९

मत्त गज रूपी नयन जब भी अपने आन रूपी फीलखाने से छूटते हैं तभी प्रेमी जनों को ठोकर मार कर चलते हैं। ३८०

यद्यपि तुम्हारे गज नयन अंजन की बेड़ियों में युक्त हैं तथापि भुव मुनवर चाट की तरह सन चलाते रहते हैं। ३८१

प्रेम बाजार के बीच में प्रिय के नयन गज छूट गये हैं। अतः नयन रूपी दुकानों के पलक रूपी मजबूत किवाड़ बन्द कर लो। ३८२

वीर नयन

३८३

भौंह कमान कटाछ सर, समर-भूमि विचलै न।
लाज तजे हू दुहुँनि के, सजल सुभट से नैन।

३८४

पोहचत, टरत न सुभट लौं, रोकि सकै कोउ नाहि।
लाखन ही की भीर मे, आंख उहीं चलि जाहिं॥

३८५

नैना प्यासे रूपके, राखे रहे न ओट।
चतुर सूरवाँ क्यो बचे, करै भीर मे चोट॥

३८६

इती भीर हूँ भेदि कै, कित हूँ ह्वै, इत आइ।
फिर डीठि जुरि डीठि सौं, सब की डीठि बचाइ॥

दोनों के पानीदार वीर के समान नयन लज्जा त्यागकर भौंहो की कमान और कटाक्षों के बाण लेकर युद्ध भूमि मे विचलित नहीं हो रहे हैं। ३८३

लाखों की भीड़ में भी इन्हें कोई नहीं रोक सकता। शूरवीर की तरह ये आँखें भी अपने प्रतियोगी के पास बिना टले पहुंच जाती हैं। ३८४

रूप के प्यासे नयन छिपाकर रखने पर भी नहीं रहे, जैसे चतुर शूरवीर चूकता नहीं है और भीड़ में भी अपनी चोट चला देता है। ३८५

इतनी भीड़ को चीरती हुई किधर ही से घूम फिरकर उसकी दृष्टि इधर आती है और सबकी नजर बचाकर मेरी दृष्टि से मिलकर लौट जाती है। ३८६

३८७

जे सूरा रन मे भिर, टूक टूक ह्वै जाहिं ।
ते नेही ह्वै औतरें, कटत कटाछिन माँहि ॥



जो शूरवीर रण भूमि में भिडकर टुकडे टुकडे होते हैं वे ही जब प्रेमी होकर इस प्रेम पथ मे आते हैं तो कटाक्षों से ही कट जाते हैं । २८७



लोभी नेत्र

३८८

नैन हमारे लालची, देख्यो चाहै तोहि।
ना तूं मिलै न सुख हुव, ताते विपत ज मोहि॥

३८९

नैन हमारे लालची, क्यों हि लगाऊँ सीख।
जहं जहं देखत रूप को, तहं तहं माँगत भीख॥

३९०

जस अपजस देखत नहीं, देखत सांवल-गात।
कहा करं लालच भरे, चपल नैन चलि जात॥

३९१

नख सिख रूप भरे खरे, तो माँगत मुसकानि।
तजत न लोचन लालची, ए ललचौंहो बानि॥

मेरे लालची नेत्र तुझे देखना चाहते है किन्तु न तो तेरा मिलाप हो और न छु
हो । अत अपना तो विपत्तियो से नाता जुड रहा है । ३८८

ये नयन जहाँ कही भी रूप सौंदय देख लेते हैं वही पर भीख माँगने लग जात
हैं ऐसे लोभी नयनो को कसे शिक्षा दी जाय ? ३८९

चचल नेत्र, यश अपयश का विचार नही करत हैं और केवल साँवरी सूरत के
लोभ में वही चले जात हैं । ३९०

ये लालची नेत्र नख शिख के सौंदय स भर जाने पर भी उसकी एक मुस्कान
माँग रहे हैं और अपनी लालच भरी आदत नही छोड रहे हैं । ३९१

३६२

नयणां समो न लालची, परमुख लागे धाय।
आग पराई आण कै, अपणी देह लगाय ॥



इन नयनो क बराबर काइ लालची नहीं दखा जा दूसरों क मुँह जा लगते हैं और पराइ आग लाकर अपन शरीर म लगा लत हैं। ३९२

व्यापारी नयन

३९३

लोभ लगें हरि रूप के, करी साट जुरि जाय ।
हौं इन बेची बीचही, लोयन बडी बलाय ।।

३९४

आँखिन सो आँखें मिलीं, मन जु गयो ता साथ ।
जैसे पथहि-पथ मे, ठग बेचत ठग हाथ ।।

३९५

रूप हाटरी देखि कै, गाहक भये जु नैन ।
जिय गहने धरि ले चले, बिरह बिसाहि हुसेन ।।

३९६

नैना मन गहने धर्यो, लह्यो रूप रसलीन ।
भाव ब्याज-वारिधि बढ्यो छुटिवो कवन प्रवीन ।।

हरि रूप के लोभ में लगे हुए इन नयनों ने उनसे मिलकर सट्टा कर लिया। ये नयन-दलाल बड़े-बनाय हैं जो मुझे बीच ही में बेच दिया। ३६३

रास्ते चलते हुए आँखों से आँखें मिली और एक दूसरे का मन एक दूसरे के पास चला गया जैसे किन्हीं दो ठगों ने मार्ग ही में अपनी अपनी वस्तु का परस्पर विनिमय कर लिया हो। ३६४

हुसेन कहते हैं कि रूप की दुकान देखकर आँखें ग्राहक बन गईं और जीव को गिरवी रखकर विरह विसा कर ले चली। ३६५

आँखों ने मन को गिरवी रखकर रूप उधार ले लिया किन्तु अब भाव रूपी ब्याज का समुद्र बढ़ जाने से मन किस प्रकार छूटे? ३६६

३६७

नैन मिले तें मन मिलै, होय साट दर हाल।
इह तो सौदा सहज का, जोर न चलत जमाल॥

३६८

भुंह डांडी बिच नन पल, लट हाथा तिल पाट।
सरका पेम बिकात है, नेह नगर के हाट॥

३६९

भुंह डांडी कांटो-तिलक, चल-पल पुतरी-बाट।
तोलत मूरत मित्र की, नेह-नगर की हाट॥

४००

भुंह डांडी तोलन तिलक, बरनि डोर पल नैन।
धुर-कटाछ पिय-मन तुलै, तोलत मूरत मैन॥

४०१

भुंह डांडी पल नैन बिच रस जौती सजि ताहि।
मित्त सुरत अर गज सुरत, पासग तुलो न आहि॥

४०२

तिसरी–कांटो भुंह डांडो, दृग दोउ–पला बनाय।
तोलत प्रीत दुहूंन की, घटि बढि करो न जाय॥

नयनो के मिलने स मन तो मिल ही जाता है जो कि प्रत्यक्ष वदला होता है। जमाल कहते हैं यह स्वाभाविक व्यापार है इसमें किसी का जोर नही चलता। ३९७

नेह नगर के बाजार में ग्रलकावलि रूपी हाथो स पकडा हुई भौह की डाँडी, नयना के पलने ग्रौर तिल (ग्राख का तारा) के बाटोवाली तकडी म तुलकर प्रेम बिक रहा है। ३९८

भौह की डाडी ग्रोर तिलक का काटा एव ग्राखो क पलडों की तकडी म पुत लिया के बाटो से यह नायिका नेह नगर की दुकान म मित्र का सूरत तोल रही है। (भौह ग्राँख पुतलियाँ, कटाक्ष चितवन ग्रादि ग्रास्यज य भावो से नायक की थाह ले रही है)। ३९९

भौंह रूपी डाँडी तिलक रूपी काटा नयन रूपी पलड एव बरौनी रूपी डोरियाँ वाले तराजू म कटाक्ष रूपी भार द्वारा प्रिय का मन तुल रहा है ग्रौर कामदेव स्वय तोल रहा है। ४००

ज्योति (दृष्टि) रूपी डोर से भौहा की डाडी म नयनो के पलडे बँधे हुए हैं इस तकडी म मित्र की सूरत म सारे जगत की मूरतें भी बराबर नही तोली जा सकीं। ४०१

इस तराजू में भौंह रूपी डाडी के बीच में तिलक रूपी काटा है ग्रौर ये दोनो की प्रीति तोल रही है इसमें घटाने बढाने का ग्रवकाश नही। ४०२

४०३

नैनन मूरति स्याम की, ल राखी हिय माँहि।
सो निधिउ वहइ ल रह्यो, नैकु दिखावत नाँहि ॥

४०४

तुम-से, तुम हौ अति भलौ,–बनिज कियौ तुम नाह।
चितवनि दैकर मन लियौ, तापर श्रीफल चाह ॥

४०५

साहु कहावत फिरत हैं, चित सरसाए च व।
तेरे नैन दिवालिया, मन लै देति न पाव ॥

४०६

पल पल्लौ भर इन, लियौ तेरो नाज उठाइ।
नैन हमालन दै अरी, दरस-मजूरी आई ॥



नयनो ने स्याम की सलोनी मूर्ति लेकर हृदय के पास (धरोहर रूप में) रख दी। उस धरोहर को हृदय ले उठा और अब किसी का आँख से नही दिखलाता। ४०३

हे प्रिय तुम्हारे जमे तो तुम ही हो। अच्छा व्यापार किया जो चितवन देकर तो मन लिया और उस पर नारियल (कुच) की चाह रखते हो। ४०४

चित म चाह भरे हुए ये तेरे नेत्र साहूकार कहलाते फिरते हैं पर हैं ये ऐसे दिवालिया कि जो मन (मण) लेकर बदले म पाव (पाव) भी नही देत है (मन लेकर हमारे यहा पाव भी नही देते।) ४०५

पलक रूपी पल्ला मे इन नन–हमालो ने तेरा नाज (अनाज, अदाए) उठाया है और इन्हे परेखा रूपी मजूरी दे है। ४०६

नयन संन्यासी

४०७

अर बराय पिय गमन सुनि, अरुण बरन चल चीन्ह ।
मानों नयन उदास ह्वै, बसन भगोहे कीन्ह ॥

४०८

हरि पिय प्यारे के चलत, भये दिगबर नैन।
मौजी इक टक ब्रज बधू रही ठगी सी ऐन ॥

४०९

सम्मन जोगी मैं भया, बिरह-नाथ के साथ ।
भिक्षा माँगू प्रेम की, नैन पतर ले हाथ ॥

४१०

दृग-जोगी पलकें-जटा स्याई-भसम लगाइ ।
रूप भीख के लालची, जित देखें तित जाइ ॥

प्रिय के गमन की बात सुन, घबडाकर लाल रंग हुए नयनों को देखो ? मानो उदासी (एक प्रकार के साधु) होकर इन्होंने भगवे वस्त्र धारण कर लिए हों। ४०७

आनंदित ब्रज बाला प्रिय हरि के जाने पर एक टकटकी लगाये बिलकुल ठगी हुई सी रह गई, और उसके नयन दिगंबर (नंगे साधु) हो गये (पलक रहित होगये)। ४०८

सुमन कहते हैं कि विरह रूपी नाथ का साथ पाकर मैं योगी हो गया और नयनों का पात्र लेकर प्रेम की भिक्षा माँगता हूँ। ४०९

ये रूप की भिक्षा के लोभी नयन, पलकों की जटा और सुरमे की भस्म लपेट कर योगी बने हुए जहाँ रूप देखते हैं वहीं आ पहुँचते हैं। ४१०

४११

रूप नगर दृग जोगिया, फिरत सु फेरी देत ।
छवि कन पावत है जहाँ पल भोरी भरि लेत ।।

४१२

दृग-जोगी जगदीस के, काम-सिद्ध के सीख ।
सुंदर नगरी मे फिरैं, लेत रूप की भीख ।।

४१३

पलकनि-मठ मधि ध्यान धरि वरुनी जटा बनाय ।
नैंन दिगम्बर ह्वं रहे, रूप विभूति लगाय ।।

४१४

पलक-वसन दरसन-असन, जल-वित निस सुख चैन ।
ए तजि सुन्दरि स्याम बिनु, भये दिगम्बर नैंन ।।

४१५

जोग जुगति सिखए सबैं, मनो महा मुनि मैन ।
चाहत प्रिय अद्वैतता, सेवत कानन्नु नैंन ।।

४१६

दृग-द्विज ए उठि प्रातही, करि अँसुवन असनान ।
रूप-भूप पैं जाचही, छवि मुकताहल दान ।।

रूप की नगरी म दृग जोगी फेरी दते हुए फिरते हैं ये जहा भी छबि रूपी कण (अन्न) पात हैं वहो पलकों की झोली भर लेत हैं। ४११

जगदीश के योगी नयन, सिद्ध काम दव के शिष्य हैं और सौन्दय की नगरी में रूप की भिक्षा लते हुए फिरते हैं। ४१२

सौन्दय का विभूति लगाये बरौनियो को जटा बढाये हुए पलको क मठ में ध्यान लगाकर ये नयन दिगबर हो रह है। ४१३

हे सखि ! श्यामसुन्दर क विरह म ये नयन, पलक रूपी वस्त्रा को, दशन रूपी भोजन को तथा जल (आंसू) रूपी धन का एव रात्रि के सुख चन निद्रा को त्यागकर दिगम्बर सन्यासी हो गये हैं। ४१४

नयन रूपी योगी श्रवण रूपी वन का सवन करने लगे हैं मानो कामदेव रूपी महायोगी द्वारा योग (सयाग) की सारी युक्तिया सिखाये हुए हैं और प्रिय (परमात्मा) से अभिन्नता चाहते हैं। ४१५

ये नेत्र लाल डोरो का जनऊ गले म डालकर पलक रूपी हाथ पसार, रूप का दान मागत रहते हैं। ४१६

४१७

अरुन लगा के नैन जनु, गरे जनेऊ डारि।
रूप दान मागति रहैं, ए पल करन पसारि ॥



ये नयन-ब्राह्मण प्रातःकाल उठकर आँसुओं से स्नान करके रूप-राजा के पास छबि-दरसन रूपी मोती का दान माँगते है। ४१७



चित-चोर नयन

४१८

चित वितु बचतु न हरत हठि, लालन नग बरजोर ।
सावधान के बट परा, ए जागति के चोर ॥

४१९

कहौं कहा या चोर की, चोरी सबतें बाढि ।
तन भूसन सब छांडि कै, लीनौ मन हो काढि ॥

४२०

जब तें नैनन पिय परे, तब तें गति कछु और ।
मन खोयो तन सुधि नहीं, करयो लगि न यह चोर ॥

४२१

कैसे मन धन लूटते, भावन्तां के नैन ।
मन भय जो देतो नहीं, इन कर बरछी सैन ॥

लाल के हठी नयन जबरदस्ती से चित्त रूपी धन का हरण कर लेते हैं और कुछ भी नहीं बचता है। ये नेत्र जागनेवाले के लिए चोर एवं सावधान रहनेवाले के लिए डाकू हैं। ४१८

इस नयन चोर की चोरी का क्या वर्णन करें? यह चोरी सब चोरियों से बढ़कर है। इसने शरीर और आभूषण आदि तो सब छोड़ दिया और मन निकालकर ले गया। ४१९

जब से इन आंखों से प्रिय आये हैं तब से कुछ और ही दशा हो रही है—मन खो गया है, शरीर की कोई सुधि नहीं और चोर हाथ नहीं आ रहा है। ४२०

मन रूपी धन को प्रिय के नेत्र किस प्रकार लूट सकते थे यदि मन्मथ (काम) सैन (कटाक्ष) रूपी परछा इह नहीं देता। ४२१

४२२

प्यारे नैन की कथन, कसे कहौं कवित्त।
खिनक साह खिन चोरटा, खिन बैरी खिन मित्त ॥

प्रिय के नयना के विषय में किस प्रकार काव्य रचना की जाय ? क्षण में तो भले साहूकार दीखते है और क्षण में चोर। एक क्षण में शत्रु है तो दूसरे क्षण में मित्र। ६७२



अनुक्रमणिका